Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NAGRI PRCHARNI G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110742
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RF-990

1997
57
1940

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110747
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110747

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४५—अंक २ [नवीन संस्करण] श्रावण १९९७

भृगुवंश और भारत

[लेखक—भारतदीपक डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर एम्० ए०, पी-एच्० डी०]

मूल लेख अँगरेजी भाषा में the Bhṛgus and The Bhārata नाम से भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की त्रैमासिक मुख-पत्रिका के अक्तूबर १९३८ के अंक में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक डा० सुकथनकर हैं जो पूना से प्रकाशित होनेवाले महाभारत के संशोधित संस्करण के संपादक हैं। लेख के विशेष गौरव के कारण इसका विशद भावार्थ यहाँ प्रकाशित किया जाता है। हम भंडारकर इंस्टीट्यूट की पत्रिका के संपादक महोदय के और लेखक के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने इसके अनुवाद को अनुमति सहर्ष प्रदान की।

महाभारत राष्ट्रीय महत्त्व का ग्रंथ है। यह लेख उसके पाठ-विकास के संबंध में नया प्रकाश डालता है। संक्षेप में इसकी स्थापना यह है। महाभारत में भार्गव-सामग्री का अत्यधिक सन्निवेश है। भृगुओं की कितनी ही कथाएँ कई बार महाभारत के उपाख्यानात्मक भाग में सम्मिलित की गई हैं। वैदिक साहित्य में भी जो भार्गव-गौरव अज्ञात था वह पहली बार महाभारत में पाया जाता है। भरत-वंश की सीधी-सादी युद्ध-कथा में भार्गव-वंश की सामग्री कैसे मिल गई? अपने आप ऐसा हो गया हो सो बात नहीं। जान-बूझकर भार्गव-कथाओं के मेल से मूल भारत ग्रंथ को महाभारत का रूप दिया गया। पुरानी कथाओं को और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णनों को भार्गव-रंग में रंजित किया गया। व्यास का यह कार्य नहीं था। उनकी चतुर्विंशति साहस्री संहिता का नाम भारत था। वैशंपायन ने भी यह परिवर्धन नहीं किया। अकेले उग्रश्रवा सूत ने भी एक बार में यह परिष्कार कर दिया हो, यह भी संभव नहीं है। असल बात यह है कि महाभारत का एक महत्त्वपूर्ण संस्करण भार्गवों के प्रबल और साक्षात् प्रभाव के अंतर्गत तैयार किया गया। यह कार्य कई शताब्दियों में संपन्न हुआ होगा। महाभारत एक काव्य था। उसका पाठ भी तरल अवस्था में था। किसी गाढ़े समय में सूतों के द्वारा मूल भारत भार्गव-प्रभाव में आया और महाभारत रूप में परिवर्धित होकर वापिस मिला। शांति और अनुशासन पर्वों में जो धर्म और नीति-परक अंश हैं वे भी भार्गव-प्रभाव के फल हैं। भरतवंश की युद्ध-कहानी के बदले नए रूप में महाभारत एक धर्म-ग्रंथ बन गया। कुलपति शौनक स्वयं भार्गव थे। उन्होंने भरतवंश से भी पहले भार्गववंश की कथा सुनने की इच्छा प्रकट की। आदिपर्व में आज तक महाभारत के दो प्रारंभ पाए जाते हैं, एक अ० १ में भारत का, दूसरा अ० ४ में महाभारत का भार्गव प्रारंभ। लेखक की स्थापनाओं का सारांश उपसंहार में देखना चाहिए।

—अनुवादक, वासुदेवशरण अग्रवाल

भृगु वंश का इतिहास अत्यंत रोचक और प्राचीन है[१]। संस्कृत शब्द भृगु और यूनानी फ्लैगु (Phlegu) की समानता को देखकर डा० वेबर का अनुमान था कि इन दोनों नामों का निकास एक ही मूल शब्द से हुआ। शतपथ ब्राह्मण में दिए हुए (श० ११-६-१) भृगु-वारुणी के उपाख्यान के विषय में उनका विचार था कि यह उस युग का है जब भारतीय और यूरोपीय आर्य एक साथ रहते थे। डा० वेबर का यह भी विचार था कि इस उपाख्यान से मिलती-जुलती कथा यूनानी गाथाशास्त्र में भी है। ध्वनि-साम्य पर आश्रित वेबर साहब

१—भृगुओं के विशद वर्णन के लिये देखिए Encyclopaedia of Religion and Ethics (हेस्टिंग्ज द्वारा संपादित), ई० सीग कृत भृगु-संज्ञक लेख। वैदिक साहित्य में भृगुओं के वर्णन के लिये दे० मैक्डानल और कीथ कृत वैदिक इंडेक्स, 'च्यवन' 'भृगु', आदि लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यह सूझ अन्य विद्वानों को नहीं जँची। जो हो, यह निश्चय है कि भृगुओं का वंश अत्यंत प्राचीन है और उनके कुछ उपाख्यान बहुत ही पुराने हैं। वैदिक संहिताओं से लेकर ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के साहित्य में और महाभारत एवं पुराणों में भृगुओं की चर्चा उत्तरोत्तर क्रम से बढ़ती हुई पाई जाती है।

भृगुओं के आख्यान बड़े रोचक हैं। भारतीय गाथाशास्त्र के कई विद्वानों को इन कथाओं में नए अर्थ की प्रतीति हुई। बेरगेञ् (Bergaigne) के विचार में अग्नि का ही एक नाम भृगु था और भृगु उपाख्यान अग्नि के अवतरण की प्राचीनतम कथा का ही विकसित रूप है। डा० कुन्ह और बार्थ भृगु को विद्युत् का प्रतीक समझते हैं और कुन्ह ने अग्नि अवतरण की यूनानी कथा का समन्वय वैदिक कथा के साथ करने का प्रयत्न किया। वेबर का मत पहले लिखा जा चुका है। यह तो भार्गवों के प्राचीनतम उपाख्यानों की बात हुई। इनकी उत्तरकालीन कथाएँ भी कम भारी-भरकम नहीं हैं। परशुराम इसके एक उदाहरण हैं जिन्होंने पितृभक्ति के आवेश में माता की हत्या को भी कुछ नहीं गिना; सब क्षत्रियों का अंत करके विष्णु के अवतार का गौरव प्राप्त किया। परशुराम की कथा लोक में खूब ही प्रचलित हुई। उनके नाम के तीर्थ देश भर में फैले हुए हैं।

रोचक होते हुए भी भार्गव-कथाओं के अर्थों का व्याख्यान करना हमारा उद्देश्य नहीं है। इस निबंध का ध्येय यह है कि महाभारत ग्रंथ में भार्गवों का जहाँ जहाँ वर्णन है उन सब स्थलों का संग्रह करके यह तुलनात्मक विचार करें कि भृगुओं के संबंध में महाभारत की प्रमाण-सामग्री क्या है। महाभारत भृगुवंश-संबंधी कथाओं की खान है। ये कथाएँ संख्या में सब से अधिक हैं और इतर पुराणों की अपेक्षा महाभारत में मिलनेवाला इनका स्वरूप भी अत्यंत विचित्र है। इसलिये भारतीय उपाख्यानों के सनातन कल्पवृक्ष इस ग्रंथराज की छाया में खड़े होकर हम कुछ समय के लिये भार्गव-कथाओं पर दृष्टिपात करना चाहते हैं। यह कथाएँ जिस रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही गई हैं, इनकी जो पुनरावृत्ति हुई है और इनमें जो परस्पर विसंवाद हैं उन सब पर हम विचार करना चाहते हैं। महाभारत में जितना कि प्राय: समझा जाता है उससे कहीं अधिक भार्गव वंश की सामग्री है, और कितने ही नए भार्गवों का उल्लेख है।

अपनी दृष्टि से हम कह सकते हैं कि हमारा यह प्रयास महाभारत के मूल पाठ संशोधन से ही संबंध रखता है। अनेक वर्षों से इस पर परिश्रम करने के कारण यह विषय हमारे लिये अत्यंत रोचक बन गया है। परंतु इस निबंध के अंत में हमने यह दिखलाने की भी कोशिश की है कि हमारी विवेचना के फल-स्वरूप यह कहाँ तक संभव है कि हम मूल महाभारत के ऊपर पड़े हुए पर्दे को कुछ कुछ उठाकर उसके अज्ञात प्राचीनतम इतिहास को देख सकें।

महाभारत में पर्वों और अध्यायों के क्रम से एक तरफ से आरंभ करके हम भृगुओं के उपाख्यानों का यहाँ विचार करेंगे। भार्गव-संबंधी कुल अवतरणों की संख्या बहुत अधिक है, अत: उनमें से जो महत्त्वपूर्ण हैं उनको ही यहाँ लिया जायगा।

नीचे भृगुओं का एक वंश-वृक्ष दिया जाता है जो महाभारत से ही तैयार किया गया है। यह अत्यंत संक्षिप्त जान पड़ता है जिसमें बीच बीच में बहुत सी कड़ियाँ छूट गई हैं परंतु फिर भी इसकी सहायता से आगे के वर्णनों को पाठक सरलता से समझ सकेंगे।

भृगु-वंश-वृक्ष

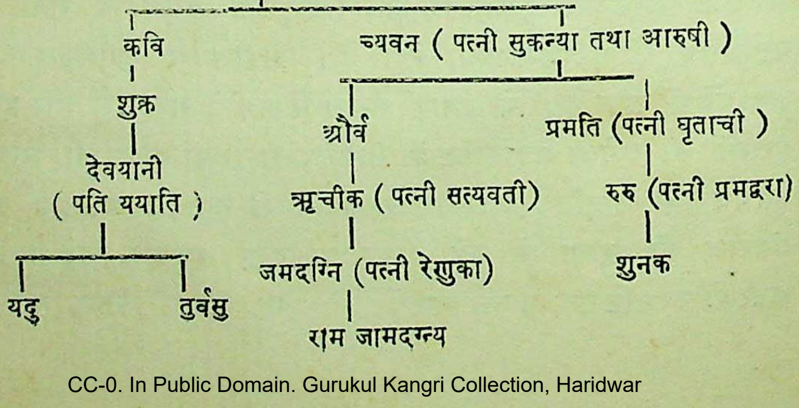

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिपर्व

आदिपर्व के दूसरे अध्याय का नाम है पर्वसंग्रहपर्व। इसे महाभारत की विषय-सूची कहना चाहिए। इसमें राम जामदग्न्य का नाम आया है। इसका प्रसंग यों है। यह सब जानते हैं कि जिस स्थान पर महाभारत का युद्ध हुआ था वह कुरुक्षेत्र कहलाता था, जैसा कि गीता के शुरू में ही कहा है—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव..............॥

परंतु लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा नाम के सूत, जो नैमिषारण्य में शौनक के बारह वर्ष के सत्र में महाभारत की कथा सुना रहे हैं, इस स्थान को कुरुक्षेत्र न कहकर समंतपंचक के नाम से पुकारते हैं। आरंभ में ही उनका कहना है कि उन्होंने समंतपंचक नामक पुण्यतीर्थ के दर्शन किए हैं, और वस्तुतः वे उस समय वहीं से आए हुए थे (१।१।११ प्रभृति)[१] —

समंतपंचकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम्।
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा।
पाण्डवानां कुरूणां च सर्वेषां च महीक्षिताम्॥
दिदृक्षुरागतस्तस्मात्समीपं भवतामिह।

१—पहला अंक महाभारत के पर्व को, दूसरा अध्याय को और तीसरा श्लोक को इंगित करता है। मूल लेख में आदिपर्व के उद्धरण पूना के संशोधित संस्करण से दिए गए थे। शेष पर्वों के लिये चित्रशाला प्रेस से प्रकाशित साधारण संस्करण काम में लाया गया था। अब विराटपर्व और उद्योगपर्व के संशोधित संस्करण भी छप चुके हैं और उद्धरणों के अंक उन्हीं से दे दिए गए हैं।—अनुवादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे श्रोताओं को कुछ जानने का कुतूहल हुआ। तदनुसार दूसरे अध्याय में चलते ही ऋषियों ने सूतजी से प्रश्न किया कि यह समंतपंचक क्या है, इसके विषय में हम जानना चाहते हैं (१।२।१)—

समंतपंचकमिति यदुक्तं सूतनंदन।
एतत्सर्वं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥

और सूत ने इस पर जो कथा सुनाई उससे यह जाना गया कि समंतपंचक भार्गवों का तीर्थ था जो कुरुक्षेत्र के आसपास था। वस्तुतः सूतजी के वर्णन से यह बात मालूम हो जाती है कि यह वही पवित्र स्थान था जहाँ त्रेता और द्वापर युग की संधि में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ (शस्त्रभृतां वरः १।२।३) भार्गव राम ने क्षत्रिय वंश का उन्मूलन करने के बाद रक्त के पाँच सरोवर, जो संभवतः गोलाई में होने के कारण समंतपंचक कहलाए, भर दिए थे और जहाँ पर उन्होंने अपने पितरों का तर्पण करके उनसे यह वर प्राप्त किया था कि यह शोणित-ह्रद पवित्र जलतीर्थ के रूप में परिणत हो जावेंगे (१।२।३ प्रभृति)—

त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः।
समंतपंचके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्॥
स तेषु रुधिराम्भस्सु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः।
पितॄन्संतर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम्॥

तुरंत बाद ही नवें श्लोक में यह बताया है कि कुरु-पांडवों का युद्ध इसी समंतपंचक में लड़ा गया था (१।२।९)—

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समंतपंचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥

इससे यह मालूम हुआ कि कुरुक्षेत्र का ही दूसरा नाम समंतपंचक था। प्रत्यक्ष है कि यह उस स्थान का भार्गव-नाम था। लोक में भार्गव-नाम विस्मृत हो गया, कुरुक्षेत्र नाम ही प्रचलित रह गया। अब भी प्रतिवर्ष सूर्य-ग्रहण के समय लाखों यात्री अपने महान् पूर्वजों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रक्त से पवित्र हुए कुरुक्षेत्र के तीर्थों में स्नान करने के लिये एकत्र होते हैं।

आदिपर्व में इसके बाद भार्गव राम का वर्णन अध्याय ५८ में आया है। विषय प्रायः वही है। किस प्रकार सब देवताओं ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया, इस प्रसंग के आरंभ में ही भार्गव राम के सर्व-क्षत्रांतक पराक्रम का वर्णन किया गया है (१।५८।४)—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा।
जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेंद्रे पर्वतोत्तमे ॥ (१)

इस श्लोक की पहली पंक्ति विशेष ध्यान देने योग्य है। महाभारत में यह बार बार दुहराई गई है। कृष्ण द्वैपायन ने महात्मा पांडवों के तथा अन्य तेजस्वी क्षत्रियों के यशःप्रचार के लिये जिस महाग्रंथ की रचना की उसके कोने कोने में इस श्लोकांश की विजय-ध्वनि गूँजती हुई सुनाई पड़ती है (१।५६।२५)—

कृष्णद्वैपायनेनेदं कृतं पुण्यचिकीर्षुणा
कीर्त्तिं प्रथयता लोके पांडवानां महात्मनाम्।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥

क्षत्रियों को नामशेष करके जब भार्गव राम महेंद्र पर्वत पर तप करने चले गए तब क्षत्रिय कुल की स्त्रियाँ पीछे रह गईं और क्षत्रियों की परंपरा के अस्त होने की आशंका उत्पन्न हो गई (आदि० अ० ५८)। क्षत्रियों के निर्बीज होने पर उनकी स्त्रियों ने ब्राह्मणों से संतान के लिये प्रार्थना की और इस प्रकार पुनः क्षत्रिय-वंश का सूत्रपात हुआ। यह दूसरा क्षत्र-कुल, जो ब्राह्मणों से समुत्पन्न था, धर्म-वृद्धि को प्राप्त हुआ और एक बार फिर ब्राह्मण-प्रमुख चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था स्थापित हुई (१।५८।८,१०)—

एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः।
जातमृध्यत धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम्।
चत्वारोऽपि तदा वर्णा बभूवुर्ब्राह्मणोत्तराः ॥

....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मव्रतपरायणाः ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः ॥

इस स्वर्णयुग के अनंतर देवासुर-संग्राम में हारकर स्वर्ग से भागे हुए असुरों ने युद्ध को जारी रखने के लिये इस पृथिवी पर राजकुलों में जन्म लिया, और इस तरह फिर से धरती पर अत्याचारी राजा हुए। इस दुःख से घबराकर पृथिवी ब्रह्मा के पास गई और ब्रह्मा ने उसका भार हलका करने के लिये आज्ञा दी कि सब देवी-देवता, गंधर्व और अप्सरा असुरों से युद्ध करने के लिये पृथिवी पर जन्म लें।

देवों के अंशावतार की इस कथा में चतुराई के साथ भार्गव राम का चरित्र शामिल करके यह प्रकट किया गया है कि ब्राह्मण वस्तुतः क्षत्रियों के उत्पादक बने। शांतिपर्व में (अ० ४८। ४९) यही कथा श्रीकृष्ण के मुख से कहलाई गई है और यह मानते हुए भी कि भार्गव राम ने बहुत से क्षत्रियों को मार डाला, यह कहा गया है कि कुछ क्षत्रिय छिपकर बच गए थे और जब भार्गव राम तप करने चले गए तब उन क्षत्रियों ने फिर से राज्य सँभाल लिया। पर आदिपर्व की इस कथा में तो वैशंपायन इस विषय में निस्संदिग्ध हैं कि राम के क्षत्रमेध में सभी क्षत्रिय काम आ गए थे और ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की पुनरुत्पत्ति नए सिरे से की।

आदिपर्व के अध्याय ६० में देवादिक विविध भूतों की सृष्टि का वर्णन करते हुए, थोड़े से विषयांतर के साथ, भार्गवों की वंशावली भी दे दी गई है। इस अध्याय में केवल यही ब्राह्मण-वंशावली रक्खी गई है।

इस सृष्टि-विषयक वर्णन में कहा गया है कि ब्रह्मा के ६ मानस पुत्र हुए और स्थाणु (शिव) के ११, जो ग्यारह रुद्र कहलाए। मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु, ब्रह्मा के ये ६ मानस पुत्र हैं; इस सूची में भृगु का नाम नहीं है। ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से दक्ष और बाएँ से दक्षपत्नी हुई। दक्ष के ५० कन्याएँ हुईं, जिनमें से १३ का विवाह मरीचि के पुत्र कश्यप के साथ हुआ। कश्यप की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतान देव और असुर कहलाए। देवगण का कीर्तन करने के बाद इस प्रकरण में तुरंत भृगु और उनके वंशजों का वर्णन आता है (१।६०।४०)—

ब्रह्मणो हृदयं भित्वा निःसृतो भगवान्भृगुः।

देवों के अनुप्रसंग में ही भृगु का नाम संभवतः उनके उच्च पद को प्रकट करता है। यह वंशावली अत्यंत संक्षिप्त है और इसमें राम जामदग्न्य से निःसृत भार्गव शाखा के वंशजों के ही नाम हैं। ब्रह्मा के हृदय को भेदकर उत्पन्न हुए भृगु इस शाखा के पूर्व पुरुष कहे गए हैं। परंतु अनुशासन पर्व अध्याय ८५ में भृगु की उत्पत्ति अग्नि में पड़े हुए प्रजापति के रेत से कही गई है। इसका कुछ समर्थन वैदिक साहित्य में मिलता है, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण (३।३४) में कहा है कि प्रजापति का रेत त्रेधा विभक्त हुआ और उससे आदित्य, भृगु और अंगिरा उत्पन्न हुए। इसके विपरीत पंचविंश ब्राह्मण (१८।६।१) के अनुसार भृगु और उन दोनों की उत्पत्ति वरुण से कही गई है। तैत्तिरीय उपनिषद् १।३।१।१, शत० ब्राह्मण ११।६।१।१, तैत्तिरीय आरण्यक ६।१ में भी भृगु को वरुण का पुत्र कहा गया है; वरुण से ही उन्हें ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। अनुशासन पर्व में दी हुई भृगुजन्म की कथा में उपर्युक्त मतों का कुछ समन्वय पाया जाता है। इसके अनुसार शिव वरुण के रूप में यजन कर रहे थे। ब्रह्मा उसमें अधिष्ठाता थे और दूसरे देवता और देवियाँ भी उपस्थित थीं। सुंदरी देवांगनाओं को देखकर ब्रह्माजी का रेत स्खलित हुआ। उसे मंत्रों के साथ उन्होंने अग्नि में आहुत कर दिया। उसके द्वारा यज्ञीय अग्नि से तीन पुरुष उत्पन्न हुए। जो जलती हुई ज्वालाओं से उत्पन्न हुआ वह भृगु कहलाया, अंगारों से अंगिरा हुए और बुझे हुए कोयलों से कवि उत्पन्न हुए। यह अनुश्रुति आदिपर्व के एक प्रक्षिप्त श्लोक में (आदि० २१६*), जो उत्तरी भारत की अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, पाई जाती है—

भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें स्पष्ट कहा है कि स्वयंभू ब्रह्मा ने वरुण को यज्ञ की अग्नि से उत्पन्न किया है।

आदिपर्व अ० ६० में दी हुई वंशावली के अनुसार भृगु के दो पुत्र थे, कवि (जिनके लड़के शुक्र हुए) और च्यवन। शुक्र और च्यवन के बारे में महाभारत में बड़ी लंबी चौड़ी कथाएँ हैं। च्यवन के बाद वंशावली इस प्रकार दी हुई है—च्यवन-और्व-ऋचीक-जमदग्नि-राम[१]। ऋचीक को छोड़कर अन्य सब भार्गवों के पराक्रमों की विस्तृत कथाएँ महाभारत में मौजूद हैं। आदिपर्व अ० ७१ से ८० में ययाति की प्रसिद्ध कथा (ययात्युपाख्यान) है जिसमें शुक्र और उनकी गर्वीली कन्या देवयानी का प्रमुख भाग है। पार्जिटर के अनुसार ययाति से पांडवों तक १९ पुश्तों का फर्क है इसलिये यद्यपि पांडवों की कथा से उस उपाख्यान का संबंध नहीं के बराबर है फिर भी ययाति उपाख्यान को, भार्गव रंग में रँगे होने के कारण, महाभारत में किसी पुराणांतर से अपना लिया गया।

अध्याय ७० में वैशंपायन ने चंद्रवंश का थोड़ा सा वर्णन किया है जिसमें ययाति और उनके पाँच पुत्रों का हवाला है। पर जनमेजय को इससे संतोष नहीं हुआ और उन्होंने वैशंपायन से प्रार्थना की कि महाराज ययाति की कथा, जो कि प्रजापति से दस पीढ़ी बाद हुए (दशमो यः प्रजापतेः १।७१।१), विस्तार से सुनाइए। ययाति की कथा इस प्रकार है—

अंगिरा के लड़के बृहस्पति देवों के गुरु थे। भार्गव शुक्र, जिनका नाम काव्य उशना भी है, असुरों के गुरु थे। अन्य भार्गवों की भाँति शुक्र भी मंत्रविद्या में प्रवीण थे। उन्हें मृतक को फिर से जीवित करने की संजीवनी नामक विद्या का ज्ञान था। बृहस्पति इसमें कोरे थे। इसलिये असुरों के साथ सफलतापूर्वक युद्ध करने में देवों को अड़चन पड़ती थी।

१—परशु रखने के कारण भार्गव राम का एक नाम परशुराम भी प्रसिद्ध है, पर यह नाम महाभारत में कहीं नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: देवों के कहने से बृहस्पति-पुत्र कच संजीवनी सीखने के लिये शुक्राचार्य के, जो उस समय असुरराज वृषपर्वा के पुरोहित थे, शिष्य बनकर रहे। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी बे सोचे समझे कच से प्रेम करने लगी। कच ने उसके विवाह के प्रस्ताव को नम्र भाव से, पर दृढ़ता के साथ, अस्वीकार कर दिया। एक दिन जब वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और शुक्र-कन्या देवयानी नदी-स्नान को गई थीं तब नदी-तट पर रखे हुए उनके वस्त्रों को इंद्र ने एक में मिला दिया जिसके कारण शर्मिष्ठा ने भूल से देवयानी के कपड़े पहिन लिए। इस पर दोनों में कहा-सुनी हुई और शर्मिष्ठा ने देवयानी को घास-फूस से भरे हुए एक अंधे कुएँ में ढकेल दिया। वह वहाँ पड़ी थी कि राजा ययाति ने आकर उसको कुएँ से निकाला और शुक्र की अनुमति से उससे विवाह कर लिया। इससे पहले ही अपने कुछ उजड्ड व्यवहार के कारण शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बन चुकी थी इसलिये विवाह के समय उसे देवयानी के साथ ययाति के घर जाना पड़ा। कुछ दिन तक तीनों मजे में रहे। शुक्राचार्य ने ययाति को सचेत कर दिया था कि वह शर्मिष्ठा के शरीर का स्पर्श न करे। परंतु विलासी ययाति से यह न हो सका और शर्मिष्ठा ने, इस युक्ति से कि उसके ऋतु-धर्म की रक्षा करना उसका परम धर्म है, ययाति को फुसलाकर उससे तीन पुत्र उत्पन्न किए। देवयानी के कुल दो ही पुत्र थे। एक दिन अकस्मात् देवयानी पर सारा भेद खुल गया। वह क्रोध से काँपती हुई अपने पिता के घर पहुँची और सारी कथा कही। शुक्राचार्य ने क्रोध में भरकर ययाति को शाप दिया कि उसका यौवन नष्ट हो जाय और बुढ़ापा घेर ले। ययाति बूढ़े हो गए। पीछे से तरस खाकर शुक्राचार्य ने वरदान दिया कि ययाति चाहे तो अपना बुढ़ापा किसी के यौवन से बदल सकता है। ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों से यौवन माँगा। परंतु शर्मिष्ठा की कोख से उत्पन्न सब से छोटे पुत्र पुरु के सिवा और कोई राजी न हुआ। उसकी पितृ-भक्ति से प्रसन्न होकर ययाति ने आगे चलकर उसी को राज्य दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कथा में हम देखते हैं कि भार्गव-वंशी देवयानी के हर तरह पौ बारह हैं। बेचारी शर्मिष्ठा पीछे डाल दी गई है। हाँ, अंत में अवश्य शर्मिष्ठा के लड़के पुरु को राज्य मिलता है। ययाति उपाख्यान में शर्मिष्ठा की उपेक्षा होने पर भी हम देखते हैं कि उसकी गणना आदर्श पतिव्रता नारियों में की गई है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक में अपनी प्यारी पुत्री शकुंतला को आशीर्वाद देते हुए काश्यप कण्व ऋषि को शर्मिष्ठा का उदाहरण ही सर्वोत्तम जँचा—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।

अर्थात् जैसे ययाति के यहाँ शर्मिष्ठा पूजी गई वैसे तुम भी पति के यहाँ आदर पाओ।

भार्गव राम के द्वारा क्षत्रियों के नाश और ब्राह्मणों से उनकी उत्पत्ति का जिक्र आदिपर्व के अ० ९८ में तीसरी बार फिर आया है। भीष्म और सत्यवती का संवाद हो रहा है। शंतनु-पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य की अकाल-मृत्यु से कुरुकुल का उच्छेद हो जाने के कारण सत्यवती भीष्म से प्रस्ताव करती है कि वह विचित्रवीर्य की स्त्रियों के साथ संतान उत्पन्न करे। भीष्म ने अखंड ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है इसलिये वे इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं। उन्होंने सलाह दी कि किसी ब्राह्मण के नियोग से पुत्र उत्पन्न कराओ। इस आपद्धर्म के समर्थन के लिये जो कथा भीष्म ने कही वह वही भार्गव राम की पुरानी कथा है। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये भार्गव राम ने हैहयवंशी कार्त्तवीर्य अर्जुन को मार डाला और फिर धनुष उठाकर अपने दिव्य अस्त्रों से अनेक बार क्षत्रियों का विध्वंस किया। इस प्रतापी भृगु-वंशज ने २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्र कर दिया (१।९८।३)

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा। (२)

इस आपत्काल में धर्मात्मा ब्राह्मणों ने क्षत्रिय-स्त्रियों में बीज-वपन करके फिर क्षत्रियों के उत्सन्न कुलों को जीवित किया। सत्यवती को भी इसी युक्ति से कुरुवंश की रक्षा करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक भार्गवों के पुराने चरित्रों का वर्णन आता रहा है। अ० १२१ में पहली बार महाभारत के एक जीवित पात्र का एक भार्गव से संपर्क देखा जाता है। इस पुराण-मिश्रित इतिहास में यह आवश्यक नहीं कि सब कथाएँ समसामयिक घटनाओं के आधार पर ही हों, इसलिये जो भार्गव राम कुछ देर पहले त्रेता और द्वापर की संधि में वर्तमान थे वे द्वापर और कलियुग के बीच में होनेवाले आचार्य द्रोण के गुरु बताए गए हैं। संभव है, यह शिष्यपना केवल लाक्षणिक हो; क्योंकि द्रोण कौरव, पांडव और दूसरे वीर क्षत्रियों के गुरु थे और भारत-युद्ध के अगुआ वीरों में से थे, इसलिये उनका भी कोई गुरु होना चाहिए। भार्गव राम से, जो सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ थे (सर्वशस्त्रभृतां वर:), अच्छा गुरु और कौन होता ? एक बार इसे स्वीकार कर लेने पर कथा को अच्छी तरह माँज डाला गया। यह बताया गया है कि विद्या पढ़कर जब द्रोण गृहस्थ हुए, उन्हें गरीबी ने सताया। उन्होंने सुना कि भार्गव राम ब्राह्मणों को धन बाँट रहे हैं। कथाकार के लिये इसमें झिझक की बात न थी; क्योंकि राम चिरजीवी हैं। जब द्रोण पहुँचे, राम वन जाने को तैयार थे। उन्होंने कहा—जो धन था, मैं ब्राह्मणों को दे चुका, यह पृथ्वी भी मैंने अपने पुरोहित कश्यप को दे डाली, और अब एक पार्थिव शरीर और दूसरे दिव्य अस्त्रों को छोड़कर मेरे पास कुछ नहीं बचा, तुम जो चाहो ले लो। द्रोण ने दिव्य अस्त्र माँग लिए। भार्गव राम ने प्रसन्नतापूर्वक उन अस्त्रों को दे दिया और साथ ही उनकी विद्या भी द्रोण को सिखला दी। द्रोण की यह कथा संक्षेप के साथ अ० १५४ में फिर आई है। द्रौपदी के स्वयंवर में जाते हुए पांडवों को एक ब्राह्मण उसे सुनाता है।

आदिपर्व अ० १६९ से १७२ में फिर भार्गव इतिहास आता है जिसका नाम और्वोपाख्यान है। वस्तुत: यह विषयांतर के भीतर विषयांतर है।

जब पांडव द्रुपद की राजधानी की ओर यात्रा कर रहे थे, मार्ग में गंधर्वाधिपति चित्ररथ अंगारपर्ण उनको रोकता है और अर्जुन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारकर उसका मित्र बन जाता है। इस प्रसंग में कुशल कथाकार ने कुछ कहानियाँ जड़ दी हैं जो विषयांतर मात्र हैं और कथा-प्रसंग से जिनका संबंध नहीं के बराबर है। इसी में वशिष्ठ का उपाख्यान भी है। कहा जाता है कि कान्यकुब्ज के अधिपति विश्वामित्र ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को छीनना चाहा। उसमें असफल होकर वे तप करने लगे और अंत में वे ब्राह्मण पदवी को प्राप्त हुए। इसी में आगे यह कहा है कि सुदास-पुत्र कल्माषपाद को वशिष्ठ-पुत्र शक्ति ने शाप देकर नरमांसभक्षी बना दिया और उसने अपने इस राक्षसी कर्म का प्रारंभ वशिष्ठ के पुत्रों से ही किया। अंत में वशिष्ठ ने उसको इस शाप से मुक्त किया। उपाख्यान के अंतिम भाग में यह कहा है कि उन्होंने अपने प्रपौत्र, शक्ति के पुत्र, पराशर को, जो सारे संसार को भस्म करने पर उतारू हो गया था, भार्गव और्व की कथा सुनाकर समझाना चाहा। यहाँ यह स्पष्ट है कि वशिष्ठ-उपाख्यान के भीतर भार्गव-उपाख्यान सम्मिलित कर दिया गया है। और्व की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

किसी समय हैहय-वंश के कृतवीर्य नामक राजा थे। भृगु-वंशी ब्राह्मण उनके पुरोहित थे। राजा ने अपने पुरोहितों को बहुत धन दिया। उनके बाद उनके लड़कों ने वह धन भृगुओं से वापिस माँगा। भृगुओं ने उसमें से कुछ लौटा दिया, सब नहीं। ऐसा हुआ कि एक बार भृगुओं की बस्ती में खुदाई करते हुए क्षत्रियों को बहुत सा कोष मिल गया। यह सोचकर कि भृगुओं ने जान-बूझकर धन छिपाया है, उन राजाओं ने बे सोचे समझे भृगुओं का वध करना आरंभ कर दिया और गर्भवती स्त्रियों तक को न छोड़ा। कुछ भार्गव स्त्रियाँ भागकर हिमालय में छिप गईं। एक स्त्री ने अपने गर्भ को ऊरु भाग में छिपा रखा। उससे और्व का जन्म हुआ जिनके तेज से सारे हैहय अंधे हो गए। दुखी होकर वे उस स्त्री से क्षमा याचना करने लगे। इस पर उसने कहा—

'मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ। हाँ, यह भृगुवंशी कुमार तुम्हारे ऊपर कुपित हैं। और इसी महात्मा भार्गव के कारण तुम्हारी आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती रही हैं। भृगुवंश के नाश को देखकर मैंने इस कुमार को एक शत वर्ष तक अपनी जंघा में छिपा रखा। भृगुवंश के कल्याण के लिये इनको गर्भ में ही सांग वेद प्रतिभासित हो गए। ये हो तुम्हारे नाश के कारण हैं। यदि तुम इन और्व को प्रसन्न कर सको तो तुम्हारी नेत्र-ज्योति तुम्हें प्राप्त हो सकती है'। इतना सुनकर क्षत्रियों ने और्व से क्षमा माँगी और और्व ने उन्हें क्षमा दान दिया। परंतु भार्गव-वंश के साथ हुए उस अन्याय को वे भूले नहीं और पाप से भरे हुए इस जगत् का क्षय करने के लिये घोर तप करने लगे। उनके तप से सारे लोक आकुल हो गए। तब और्व के पितरों ने आकर उनसे कहा--हे पुत्र! तुम्हारे तप के प्रभाव को हमने देख लिया। अब शांत होकर लोकों को क्षमा करो। उन पितरों ने यह भी कहा कि क्षत्रिय निर्दोष थे। भृगुओं ने स्वयं ही अपने नाश का यह उपाय रचा था। बेचारे क्षत्रियों की क्या शक्ति थी जो तपस्वी भार्गवों को छू सकते।. वस्तुत: भार्गव लोग अपने जीवन से ऊब गए थे पर उनके तप से मृत्यु उनके पास न फटकती थी और आत्मघात करना भी उचित न था। इसी लिये उन तेजस्वी ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के साथ वैर मोल ले लिया। अन्यथा मोक्षाभिलाषी उन महात्माओं को धन की लिप्सा कैसे हो सकती थी? और्व ने कहा कि यह सत्य है, परंतु संसार को दग्ध करने के लिये जो क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई है उससे यदि जगत् का नाश न हुआ तो वह स्वयं मुझको ही जला देगी। पितरों ने कहा—हम इसका उपाय बताते हैं। तुम इस रोषाग्नि को जल में डाल दो, जल इस जगत् का आदि-कारण और प्रतिष्ठान है। और्व ने ऐसा ही किया।

इस कथा में भार्गव-उपाख्यानों की कुछ बातें स्पष्ट झलकती हैं। प्रथम क्षत्रियों के साथ युद्ध, दूसरे आततायी राजाओं के दंड देने के लिये तेजस्वी भार्गव कुमार का जन्म और अंत में उस जिघांसा से निवृत्ति कराने के लिये पितरों का आना। राम, और्व, च्यवन आदि के भार्गव-उपाख्यानों में यह प्रसंग मिलते-जुलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभापर्व

सभापर्व में ८१ अध्याय और लगभग २७०० श्लोक हैं। इसकी कथा सुग्रथित है। युधिष्ठिर की सभा के निर्माण से लेकर उनके दूसरी बार द्यूत-क्रीड़ा में निरत होने तक की कथा गंभीर गति से आगे बढ़ती है। इसमें विषयांतर बहुत कम हैं और उपाख्यान नहीं के बराबर हैं। सिर्फ दो बार कथा-प्रसंग कुछ बहक गया है। शुरू में अध्याय ५ से १२ तक नारद के द्वारा प्रश्नों की रीति से राजधर्म का वर्णन है और पुन: इंद्र, यम, वरुण, कुबेर और ब्रह्मा की सभाओं का वर्णन है। अ० १७ से १९ तक कृष्ण ने जरासंध के पूर्व जन्म का वृत्तांत कहा है। फलत: इस पर्व में भार्गव-सामग्री बहुत ही स्वल्प है। कई बार संकेत-रूप में उनका उल्लेख है। भृगु, मार्कंडेय, राम, जामदग्न्य आदि प्रख्यात भार्गव ऋषि ऊपर लिखी हुई देवसभाओं में उपस्थित कहे गए हैं। युधिष्ठिर की सभा में भी वे उपस्थित कहे गए हैं। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय में भी उनका वर्णन है। १४ वें अध्याय में भार्गव राम के द्वारा क्षत्रिय-वध की घटना का संकेत आता है। यह कथा सूतजी को कभी विस्मृत नहीं होती। विषय से असंबद्ध होने पर भी राजसूय के सामान की तैयारी के समय कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि इस समय के क्षत्रिय जामदग्न्य राम के द्वारा नाश को प्राप्त हुए पहले क्षत्रियों की तुलना में हीन हैं (२। १४।२)—

जामदग्न्येन रामेण क्षत्रं यदवशेषितम्।
तस्मादवरजे लोके यदिदं क्षत्रसंज्ञितम्॥

जिस प्रकार आचार्य द्रोण के धनुर्वेद में गुरु राम जामदग्न्य कल्पित किए गए उसी भाव से प्रेरित होकर भीष्म का गुरु भी उन्हीं को कहा गया है। इस बात का विस्तार आगे चलकर उद्योगपर्व के अंबोपाख्यान में किया गया है जो कि प्रक्षिप्त अंश है। दुर्योधन के परम मित्र कर्ण के साथ भी राम का वही संबंध बतलाया गया है। शिशुपाल की दृष्टि में अर्घ पाने के लिये यह भी कर्ण का एक गुण था (२।३७।१५)—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११२१ 110747

अयश्च सर्वराज्ञां वै बलश्लाघी महाबलः।
जामदग्न्यस्य दयितः शिष्यो विप्रस्य भारत॥
येनात्मबलमाश्रित्य राजानो युधि निर्जिताः।
तं च कर्णमतिक्रम्य कथं कृष्णस्त्वयार्चितः।।

आरण्यकपर्व

यह पर्व प्राचीन कथाओं और उपाख्यानों का महाकोष है। इसमें भार्गव-सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। कथा सुनाने में भी एक भार्गव ने काफी भाग लिया है। भृगु-संबंधी पहला अवतरण तीर्थयात्रापर्व में है। अ० ८२ प्रभृति में सन्निविष्ट तीर्थ-वर्णन पहले पुलस्त्य ऋषि ने भीष्म को सुनाया था; फिर उसी को नारद ने युधिष्ठिर के आगे कहा है। यह तीर्थों की श्लोकबद्ध सूची है जिसमें तीर्थ का नाम, धर्मकृत्य और पुण्यफल-प्राप्ति का वर्णन है। इस नीरस तालिका में बहुत कम स्थानों पर तीर्थ के माहात्म्य-संबंधी दो-एक प्रश्न पूछकर कोई कोई कथा जोड़ दी गई है। इसी सूची में राम-ह्रदों का भी उल्लेख है (३।८३।२६) जिनके वर्णन में ३२ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। यहाँ भी वही भार्गव राम और क्षत्रियों के वध की कथा है, जो इस चौथी आवृत्ति में इस प्रकार है,—

महातेजस्वी और पराक्रमी राम ने युद्ध में काम आए हुए क्षत्रियों के शोणित से पाँच ह्रद भर दिए। उससे उन्होंने पितरों का तर्पण किया। प्रसन्न होकर पितरों ने दर्शन दिए और कहा—हे महाभाग! हम तुम्हारी पितृभक्ति से प्रसन्न हैं। हे भार्गव! इच्छानुसार वर माँगो। यह सुनकर प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ राम ने (रामः प्रहरतां वरः—३।८३।३१) हाथ जोड़कर निवेदन किया—यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपया यह वर दीजिए कि पुनः तपस्या करने में मुझे प्रीति उत्पन्न हो। आपके अनुग्रह से क्षत्रिय-वध-जनित मेरे पाप धुल जावें और ये शोणित के ह्रद संसार में प्रसिद्ध पवित्र तीर्थ बन जावें। पितर लोग इन वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भार्गव राम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों इच्छाओं को पूरा करनेवाले वर दिए। वर देकर पितर अदृश्य हो गए। इस प्रकार तेजस्वी भार्गव के वे ह्रद अत्यंत पवित्र तीर्थ बन गए। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके जो इन ह्रदों में स्नान करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

पाठक देखेंगे कि यह कथा लगभग वही है जो पहले समंतपंचक के बारे में कही जा चुकी है। वस्तुतः समंतपंचक का ही दूसरा नाम राम-ह्रद जान पड़ता है। आदिपर्व के दूसरे अध्याय में सूतजी ने केवल चार श्लोकों में ऋषियों से यह कथा कही थी। यहाँ उपयुक्त विस्तार से उसका वर्णन हुआ है।

कुछ ही अध्याय बाद भृगु तीर्थ के वर्णन-प्रसंग में (३।६६।३४ प्रभृति) एक विचित्र कथा आती है जिसमें विष्णु के ही दो अवतार जामदग्न्य राम और दाशरथि राम में द्वंद्व दिखलाया गया है। कथा इस प्रकार है—एक बार जामदग्न्य राम दाशरथि राम से मिलने और उनकी परीक्षा लेने के लिये अयोध्या गए। दाशरथि राम उनकी अगवानी के लिये अपने राज्य की सीमा पर आए परंतु जामदग्न्य राम ने उनका बहुत अनादर किया, तथापि दाशरथि राम ने अपने प्रतिद्वंद्वी के दिए हुए धनुष को झुकाकर एक बाण चलाया जिससे सारे संसार में खलबली मच गई और जामदग्न्य राम भी घबड़ा गए। इसके बाद दाशरथि राम ने अपना विश्वरूप दिखलाकर उनको और भी नीचा दिखाया। उनका तेज क्षीण हो गया और लज्जित होकर वे महेंद्र पर्वत पर चले गए। पीछे भृगु तीर्थ में उन्होंने अपना तेज प्राप्त किया। युधिष्ठिर से कहा गया है कि वह दुर्योधन के साथ संघर्ष में खोए हुए अपने तेज को पाने के लिये उस तीर्थ में स्नान करें। यह हास्यास्पद कथा महाभारत में बहुत हाल में मिलाया हुआ प्रक्षेप है। वैसे भी मूल पाठ की दृष्टि से यह असंबद्ध है और अगस्त्य-उपाख्यान के अधबिच में बड़े भद्दे ढंग से जुड़ा हुआ है। इसकी रचना-शैली भी निकृष्ट है। जिन भार्गव राम के लिये समस्त महाभारत में ऊँचे सम्मान का भाव पाया जाता है उन्हीं की अवज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शित करनेवाली यह कथा बिलकुल बेसुरी है। हस्तलिखित प्रतियों के आधार से भी यह प्रक्षिप्त सिद्ध होती है। दक्षिण की प्रतियों में इसका कहीं नाम नहीं है। काश्मीरी प्रतियों में भी यह नहीं पाई जाती और देवनागरी अक्षरों में लिखी कुछ प्राचीन प्रतियों में भी नहीं है। महाभारत के रामोपाख्यान के साथ इस बेतुकी कथा की कोई संगति नहीं लगती और न कहीं इसका वर्णन है। रामायण में अवश्य इसी ढंग की एक कथा है परन्तु आरण्यकपर्व में इसकी मिलावट किसी मूढ़ लेखक ने अभी हाल में ही कर दी है—ऐसा जान पड़ता है।

इसके बाद के ही अध्याय १०० में फिर भार्गव दधीचि की कथा है। लोमश ऋषि कह रहे हैं कि कालकेय नामक असुरों ने वृत्र की अध्यक्षता में देवताओं को तंग करना शुरू किया। वे रक्षा के लिये ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें भार्गव दधीचि के पास, उनकी हड्डियाँ माँगने के लिये, भेजा। दधीचि ऋषि ने त्रिलोकी के कल्याण की कामना से तुरंत अपना शरीर दे दिया। दधीचि की हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र का निर्माण किया जिससे इंद्र ने असुरों को हराया। दधीचि की कथा बलदेवजी के तीर्थयात्रा-प्रसंग में (शल्यपर्व अ० ५१) फिर कही गई है।

कुछ ही अध्याय आगे चलकर जब युधिष्ठिर अपने साथियों के साथ महेंद्र पर्वत पर पहुँचे जिसे राम ने, जो अब सब कुछ त्यागकर संन्यासी बन गए थे, अपना निवासस्थान बना लिया था तो कथावाचक सूत को भार्गव राम के चरित्र की पूरी रूपरेखा खींचने का एक अच्छा अवसर मिल गया। (आरण्यक अ० ११५ से ११७ तक)।

गंगासागर में स्नान करने के बाद पांडव कलिंग देश में वैतरणी के पास पहुँचे जहाँ कश्यप का अग्निकुंड था। वे महेंद्र पर्वत पर ठहरे और उन्होंने वहाँ भार्गव राम के ही अकृतव्रण नामक एक शिष्य से राम का उपाख्यान सुना। यह कथा इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्यकुब्ज के राजा गाधि वन में तप करने के लिये गए। वहाँ उनके एक सुंदरी कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम सत्यवती था। भार्गव ऋचीक ने उससे ब्याह करना चाहा। गाधि को यह बात कुछ अच्छी न लगी और उससे बचने के लिये उन्होंने विशेष रंग के एक हजार घोड़े माँगे। ऋचीक ने घोड़े लाकर दे दिए और उसका पाणिग्रहण किया। उसी समय किसी भृगु ने (संभवतः यह और्व थे) नव दंपती के सामने प्रकट होकर वधू को यह वर दिया कि वह और उसकी माता एक एक तेजस्वी पुत्र को जन्म देंगी। शर्त्त यह थी कि सत्यवती उदुंबर वृक्ष का और उसकी माता अश्वत्थ का आलिंगन करे और दोनों अलग अलग पात्र में विशेष प्रकार का मन्त्रपूत चरु भक्षण करें। संयोग से इस विधि में उलट फेर हो गया, जिसके फल-स्वरूप सत्यवती के गर्भ से क्षत्रिय-गुणों से युक्त ब्राह्मण और उसकी माता के गर्भ से ब्राह्मणगुणोत्पन्न क्षत्रिय के जन्म की संभावना उपस्थित हुई। भृगु को मंत्र-बल से यह विदित हो गया और उन्होंने सत्यवती से सब हाल कहा। उसकी प्रार्थना पर उन्होंने एक वरदान और देकर उस संभाव्य फल को कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्यवती की कोख से जमदग्नि उत्पन्न हुए जो ब्राह्मण थे। उनके पुत्र राम हुए जिनमें क्षत्रियत्व का दोष प्रकट हुआ और मार-काट तथा युद्ध की प्रवृत्ति प्रबल हुई। शांतस्वभाव जमदग्नि को भी सब दिव्य अस्त्रों का ज्ञान स्वयं प्राप्त हो गया। राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से उनका विवाह हुआ। उससे पाँच पुत्र हुए—रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और राम। एक दिन मार्त्तिकावतक के राजा चित्ररथ को अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखकर रेणुका को कामभाव उत्पन्न हुआ। आश्रम में लौटने पर उसका भेद जमदग्नि ने जान लिया और अपने पुत्रों से उसका वध करने को कहा। चार पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञा न मानी, परंतु राम जामदग्न्य ने अपने सैनिक स्वभाव के कारण, पिता की आज्ञा के अनुसार, झटपट अपने फरसे से माँ का सिर अलग कर दिया। जमदग्नि ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुश होकर राम को कई वर दिए जिनमें रेणुका का जीवनदान भी एक था। कुछ दिन शांति से बीतने के बाद कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन जमदग्नि के आश्रम में आए। भार्गवों ने उनका उचित आदर-सत्कार किया, परंतु कृतघ्न राजा ने अपने घमंड में चूर होकर आश्रम की कामधेनु के बच्चे को पकड़कर साथ ले लिया (वशिष्ठ-विश्वामित्र-उपाख्यान की कामधेनु के समान यह कृत्य है)। बस, यहीं से महावैर का सूत्रपात हुआ। राम ने पहले उद्धत कार्त्तवीर्य को मार डाला। बदले में उसके पुत्रों ने आश्रम में घुसकर प्रतिरोध न करने-वाले जमदग्नि को मार दिया। लौटने पर राम अपने पिता की दशा देखकर आगबबूला हो गए और प्रचंड पराक्रम से न केवल कार्त्तवीर्य के पुत्रों का बल्कि उनके अनुगत समस्त क्षत्रियों का भी २१ बार वध कर डाला और समंतपंचक में पाँच शोणित-हृदों की स्थापना की (३।११७।९)—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्॥ (३)

इन्हीं ह्रदों में खड़े होकर राम ने पितरों का तर्पण किया, जिस पर ऋचीक प्रकट हुए और उनका निवारण किया। इसके बाद प्रतापी राम ने एक बड़े यज्ञ से इंद्र को प्रसन्न करके पृथिवी कश्यप को दान में दे दी और स्वयं महेंद्र पर्वत पर चले गए।

बाद के कथावाचकों ने अन्य भार्गव-कथाओं की भाँति इस कथा में भी साढ़े ग्यारह श्लोकों (३।११५।६-१९) का एक क्षेपक मिला दिया। इसमें राम को विष्णु का अवतार कल्पित करने के अतिरिक्त हैहय अर्जुन के पूर्व दुष्कर्मों का भी वर्णन है। यह अंश दक्षिणी काश्मीरी और कुछ देवनागरी प्रतियों में भी लुप्त है।

भार्गव राम की यह कथा, जिसको मिथ्या ही कार्त्तवीर्योपाख्यान भी कहा जाता है, महाभारत के प्रचलित संस्करण के ११७वें अध्याय में समाप्त हो जाती है। अ० १२२ में फिर एक भार्गव-कथा है जिसमें भृगु-पुत्र च्यवन का चरित्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांडव लोग तीर्थों में घूमते हुए पयोष्णी और नर्मदा के तट पर पहुँचे। वहाँ शर्याति-यज्ञ का स्थान दिखलाकर लोमश ने उन्हें च्यवन की निम्नलिखित कथा सुनाई—

भृगु-पुत्र च्यवन ने इसी सरोवर के किनारे इतना अधिक तप किया कि उनको लताओं ने और बाँबी ने ढक लिया। एक दिन वहाँ राजा शर्याति अपनी पुत्री सुकन्या के साथ आए। वन में विचरती हुई सुंदरी सुकन्या को देखकर च्यवन का मन कुछ पिघल गया और उन्होंने बाँबी के भीतर से ही धीमे स्वर में कुछ कहा जो सुकन्या को सुनाई न पड़ा। उस चंचल राजपुत्री ने बाँबी में से चमकती हुई दो आँखों को देखकर कुतूहलवश काँटे से उन्हें बींध दिया। उसने अनजाने ही ऐसा किया पर इसका परिणाम भयंकर हुआ और ऋषि के क्रोध से सेना का मल-मूत्र रुद्ध हो गया। घबराए हुए राजा की समझ में कुछ कारण न आया तब राजपुत्री ने उनसे अपना अपराध स्वीकार किया। तुरंत शर्याति तपोवृद्ध च्यवन के पास आए और उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा-याचना की। च्यवन ने यह शर्त रखी कि तुम अपनी कन्या को सेवा के लिये मुझे दो। राजा ने इसे मान लिया और सुकन्या को देकर वे नगर को लौट आए। कुछ दिन बाद अश्विनीकुमार वहाँ से निकले और सरोवर में नहाती हुई सुन्दरी सुकन्या को देखकर उस पर मोहित हो गए। उन्होंने विवाह का प्रस्ताव किया। सुकन्या ने न माना। उन्होंने फिर कहा—हम तुम्हारे पति को यौवन देकर रूप-संपन्न कर दें तब उसमें और हम दोनों में से तुम किसी एक को चुन लो। च्यवन की अनुमति से सुकन्या ने इसे स्वीकार कर लिया। तब रूपार्थी च्यवन को अश्विनों ने उस सरोवर में स्नान करने को कहा। तीनों ने एक साथ डुबकी लगाई और सब एकसा दिव्य रूप लेकर बाहर आए और सुकन्या से कहा—हममें से जिसे चाहो, एक को पति चुन लो। सुकन्या के समक्ष नल-दमयंती जैसी दुबिधा उत्पन्न हुई परंतु अपनी भक्ति के प्रताप से उसने च्यवन को ही चुन लिया। कृतज्ञ च्यवन ने नासत्यों (अश्विनों) से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—मैं आपसे प्रसन्न हूँ। आप दोनों को यज्ञ के सोम-पान में भाग दिलाऊँगा (तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपीथिनौ)। शर्याति ने जब यह सुना, वे अपनी पुत्री और जामाता से मिलने आए। सत्कार के बाद च्यवन ने कहा—हे राजन्! हम तुम्हें यज्ञ कराएँगे। इस यज्ञ में पहली बार शर्याति ने अश्विनों को सोम की पहली आहुति दी। इससे पहले, वैद्य होने के कारण, उनको सोम की आहुति नहीं मिलती थी। इंद्र ने इसे रोकना चाहा। च्यवन ने न माना तब इंद्र ने उन पर अपना वज्र चलाया परंतु च्यवन ने प्रहार करती हुई इंद्र की भुजा को जहाँ का तहाँ मंत्र-बल से रोक दिया और मद नाम की एक कृत्या उत्पन्न की जिसने इंद्र का पीछा किया। इंद्र ने हारकर च्यवन का पक्ष मान लिया और ऋषि ने दोनों अश्विनों को सोमपान कराया। तब से सब देवों के समान अश्विनीकुमारों को भी यज्ञ में सोम का भाग मिलने लगा। इंद्र ने क्षमा माँगकर कहा—मैंने तो शर्याति की कीर्त्ति को फैलाने के लिये ही ऐसा किया था। च्यवन के पिता भृगु ने तो अग्नि को सर्वभक्ष होने का शाप दिया था (१।६।१३), स्वयं च्यवन ने देवराज इंद्र को भी नीचा दिखा दिया।

अ० १२६ में एक भार्गव के आश्रम में सौद्युम्नि युवनाश्व पुत्र के लिये तप कर रहे हैं। एक पात्र में रानी के गर्भाधान के लिये भार्गव के द्वारा मंत्रपूत जल रक्खा गया था। रात को प्यासे राजा ने भूल से उसे पी लिया। मंत्र के बल से राजा के गर्भ रह गया और उनकी बाईं कोख से मांधाता का जन्म हुआ। द्रोणपर्व अ० ६२ में भी थोड़े भेद से यह कथा है। राजा युवनाश्व मृगया के लिये वन में गए थे। थके प्यासे होकर दूर से उन्होंने आश्रम का धुआँ देखा। वहाँ जाकर वेदी के पास रक्खा हुआ आज्य उन्होंने खा लिया जिससे गर्भ रह गया। अश्विनीकुमारों की सहायता से मांधाता का जन्म हुआ। इस कथा में न पुत्रार्थी राजा के तप का वर्णन है और न रात में उठकर अनजान में कलश का जल पीने का। संभवत: कथा का यह सीधा-सादा रूप अधिक पुराना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरण्यकपर्व में इसके बाद आनेवाले भार्गव मार्कंडेय हैं। ५० अध्यायों के लंबे संवाद में (मार्कंडेय-समास्यापर्व अ० १८२-२३२), जिसमें २२०० श्लोक हैं, काम्यक वन में पांडवों को विभिन्न विषय सुनाए गए हैं। वनवास के आरंभ में द्वैत वन में भी मार्कंडेय पांडवों से मिल चुके थे। अंत के करीब फिर युधिष्ठिर का शोक दूर करने के लिये वे उपस्थित होते हैं और राम-सीता और सावित्री-सत्यवान् की कथा सुनाते हैं। रामोपाख्यान और सावित्र्युपाख्यान में करीब १०६० श्लोक हैं (रामोपाख्यानपर्व अ० २७३-२९२; पतिव्रता-माहात्म्यपर्व अ० २९३-२९९)।

इस प्रकार मार्कंडेय-समास्यापर्व और इन दोनों उपाख्यानों को मिलाकर ३२६० श्लोक भार्गव मार्कंडेय जी के मुख में रक्खे गए हैं, यह आरण्यकपर्व का एक-चतुर्थांश होता है।

मार्कंडेय चिरजीवी हैं। भृगु-च्यवन-राम और भृगु-च्यवन-शुनक इन दो भृगु-शाखाओं से वे किस प्रकार संबंधित थे, यह न मालूम होने पर भी उनका भार्गव होना निर्विवाद है। ३।१८३।६०;१८९।६७; १९०।२ में उन्हें भार्गव, ३।२०१।७;२१७।५ में भार्गवसत्तम, ३।२०५।४ में भृगुनंदन और ३।२०५।१५ में भृगुकुलश्रेष्ठ कहा गया है। मत्स्य पुराण (१९५।२०) में मार्कंडेय को भृगु-वंश का एक गोत्रकर्ता ऋषि माना गया है।

मार्कंडेय-समास्यापर्व के कुछ विषय ये हैं—ब्राह्मण-महिमा, ब्राह्मणों को दान देने का पुण्य, स्त्री का पति के प्रति धर्म, और अग्नि के विविध रूप। उन्होंने मनु, ययाति, वृषदर्भ, शिबि, इंद्रद्युम्न (जनक के पिता), कुवलाश्व और कार्त्तिकेय स्कंद की कथाएँ सुनाई हैं। मिथिला के धर्मव्याध की कथा के प्रवक्ता भी वही हैं। मार्कंडेय की कथाओं में सबसे रोचक भाग वह है जहाँ उन्होंने सृष्टि और प्रलय का आँखों-देखा वर्णन किया है। इस रूप में मार्कंडेय एक प्रकार से क्षत्रिय मनु के प्रतिरूप हैं। वस्तुतः अ० १८७ में मार्कंडेय ने ही मनु के उपाख्यान का भी वर्णन किया है (मत्स्योपा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्यान)। इसमें कहा गया है कि संध्या करते हुए मनु को एक मछली दिखाई दी, जिसे उन्होंने कमंडलु में रख लिया। वह अपना रूप बढ़ाने लगी और अंत में मनु को आगामी जल-प्रलय की सूचना दी। मनु ने सब सामान के साथ अपनी नौका को हिमालय के नौबंधन शिखर से बाँध दिया। नाव में सब तरह के बीज थे। प्रलय के बाद उनसे मनु ने सृष्टि उत्पन्न की। अंत में मत्स्य ने अपना परिचय देकर मनु से विदा ली। यह कथा सामी (Semitic) साहित्य में आई हुई नूह की जल-प्रलय की कथा से बहुत मिलती है। पुराणों की सृष्टि-विद्या के अनुसार प्रलय के बाद विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न होकर ब्रह्माजी सृष्टि उत्पन्न करते हैं। उसके साथ मनु की सृष्टि का सामंजस्य नहीं होता। मनु की कथा के अंत में दी हुई फलश्रुति भी उसके विजातीयपन को सूचित करती है। प्राय: महाभारत के सभी प्रक्षिप्त अंशों के साथ फलश्रुति अवश्य मिलती है।

योगी मार्कंडेय के जल-प्रलय की कथा इससे विचित्र है। जल-मग्न पृथिवी पर मार्कंडेय अकेले ही समुद्र की सतह पर तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। चारों ओर जल का वारापार नहीं है। अकस्मात् उन्हें न्यग्रोध वृक्ष की शाखा पर एक बालक दिखाई दिया। मार्कंडेय चकित होकर उसे देखने लगे और उसके मुख में चले गए। वहाँ उन्होंने सारे ब्रह्मांड को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा। अनेक वर्षों तक घूमने पर भी उसका कहीं अंत न पाया और वे उसकी साँस के साथ फिर बाहर आए। तब मार्कंडेय ने उस बालक का स्वरूप पहिचाना और उन्होंने ब्रह्म को जान लिया। इस कथा में प्रलय के बाद सृष्टि के लिये बीज आदि की उपाधि नहीं है। प्रलय में भी सृष्टि नारायण के गर्भ में रहती है। योगी मार्कंडेय ने उस नारायण का साक्षात्कार करके उनकी माया का स्वरूप समझ लिया। इस कथा के अनुसार भार्गव मार्कंडेय को ही इस प्रकार प्रलय में नारायण के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कथा से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि भार्गव मार्कंडेय की योग-शक्ति कितनी बढ़ी-चढ़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कंडेय-समास्यापर्व के ४० अध्याय बाद ही फिर मार्कंडेय ने ७५० श्लोकों में रामोपाख्यान (अ० २७३-२९२) सुनाया है। जयद्रथ द्रौपदी को लेकर भागना चाहता है। पांडव उसे पकड़कर क्षमा कर छोड़ देते हैं। युधिष्ठिर खिन्न होकर पूछते हैं कि उनके जैसा अभागा भी और कोई हुआ है। इस पर मार्कंडेय ने दाशरथि राम की कथा सुनाई। जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी-मर्षण की यह कथा एकदम भोंड़ी है। रामायण का सारांश महाभारत में मिलाने के लिये ही यह भद्दा उपोद्‌घात सोचा गया है।

रामचरित सुनने के बाद युधिष्ठिर ने पूछा कि क्या द्रौपदी के समान कोई सती स्त्री पहले हुई है। इस पर मार्कंडेय ने सावित्री की कथा सुनाई जिसने अपनी पति-भक्ति के बल से यमराज से भी अपने पति के प्राण बचाए थे। भार्गव मार्कंडेय की कही हुई यही अंतिम कथा थी। वस्तुतः आरण्यकपर्व का यही अंतिम उपाख्यान है जिसके साथ भार्गव संबंधित है।

विराटपर्व

सभापर्व की भाँति यह पर्व भी छोटा है जिसमें उपाख्यानों की बाधा के बिना कथा प्रवाह वेग से आगे बढ़ता है। इसमें न उपाख्यान हैं और न भार्गव-संबंधी विषयांतर हैं। भार्गवों का उल्लेख भी कहीं कहीं है। उदाहरण के लिये भीष्म ने दुर्योधन से कहा है—जमदग्नि के पुत्र राम के अतिरिक्त और कौन द्रोण से बढ़कर है? (४।५१।१०)*

उद्योगपर्व

उद्योगपर्व में भी भार्गवों के अवतरण पर्याप्त हैं। यहाँ जामदग्न्य राम पुरानी कथाओं के विषय न बनकर महाभारत के पात्रों के साथ साक्षात् संपर्क में आते हैं। एक पात्र के साथ तो उनका युद्ध ही होता है। अ० ७० प्रभृति में पांडव मंत्रणा-सभा करके कृष्ण को दूत

---

* ये अंक बंबई संस्करण के हैं। पूना संस्करण में इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानकर इसकी संख्या ८५२* दी गई है (विराट पर्व पृ० २०३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजते हैं। हास्तिनपुर को जाते हुए कृष्ण को कुछ ऋषि मिले जिनमें भार्गव राम प्रमुख थे। वे भी हास्तिनपुर जा रहे थे (अ० ८१)। राम जामदग्न्य के साथ वहाँ पहुँचने पर भीष्म के द्वारा उनका स्वागत किया गया। सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। कृष्ण ने पांडवों का पक्ष रखते हुए न्याय्य व्यवहार के लिये अनुरोध किया (अ० ९३)। उनके भाषण के बाद जो सन्नाटा छाया उसमें भार्गव राम ने उठकर शांति की सम्मति देते हुए बिना पूछे ही दंभोद्भव की कथा सुना डाली (अ० ९४)। बदरी-वन में तप करते हुए नर-नारायण को अभिमानी राजा दंभोद्भव ने जा छेड़ा। नर ने मंत्रपूत कुशों को उसके ऊपर फेंक दिया जो अस्त्र बनकर उसकी सेना पर झपटे और राजा को हार माननी पड़ी। राम ने शांति का उपदेश देते हुए कहा कि नर-नारायण ही अर्जुन और कृष्ण हैं। इस कथा का भी यहाँ विशेष प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

उद्योगपर्व के अंत में अंबा का उपाख्यान (अ० १७०-१९३) है जिसमें भार्गव राम सक्रिय भाग लेते हैं। भीष्म ने बताया कि जन्म के समय शिखंडी कन्या था। इसलिये वे उसके साथ युद्ध न करेंगे। अपने पूर्वजन्म में वह काशिराज की पुत्री अंबा था। अंबा अपने विवाह-संबंध में भीष्म के कारण निराश रह गई और उसने भीष्म से बदला लेने का व्रत लिया। वह दुःखित होकर वन में फिर रही थी। वहाँ उसके पितामह राजर्षि होत्रवाहन ने प्रकट होकर उसको अपने मित्र राम जामदग्न्य की सहायता लेने की सलाह दी। उसी समय वहाँ राम के शिष्य अकृतव्रण आ निकले। उन्होंने भी अंबा के पक्ष का समर्थन किया। सौभाग्य से अगले दिन प्रातःकाल धनुष, खड्ग और परशु लिए हुए राम भी वहाँ आ गए। अंबा ने अपने दुःख की कथा उनसे कही और सहायता की याचना की। कुछ सोच-विचार के बाद राम ने अंबा की बात मान ली। वे सबको लेकर सरस्वती के तट पर गए और उन्होंने भीष्म को बुला भेजा। भीष्म आए। राम ने कहा—या तो अंबा को ग्रहण करो या हमसे युद्ध करो। भीष्म युद्ध का निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके अपने नगर को वापिस आए और अस्त्र-शस्त्र लेकर फिर जा पहुँचे। कई दिन तक घोर युद्ध हुआ और राम भीष्म के बाण से मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भीष्म ने युद्ध वहीं रोक दिया। अगले दिन दोनों पक्षों में फिर घोर संग्राम आरंभ हुआ। अगणित बाण और शस्त्रास्त्र चलाए गए। एक दिन अष्ट वसुओं ने स्वप्न में भीष्म से सम्मोहनास्त्र छोड़ने को कहा। अगले दिन राम और भीष्म ने एक दूसरे के ऊपर एक साथ ब्रह्मास्त्र छोड़े जो बीच में कटकर गिर पड़े। इसी अवसर पर भीष्म ने सम्मोहनास्त्र लिया। यह देखकर देवताओं ने दोनों को शांत करना चाहा। पर किसी ने न माना। अंत में भार्गव राम के पितरों ने प्रकट होकर उनसे शस्त्र रख देने को कहा। राम ने अनिच्छा से वैसा किया। बस, भीष्म का काम बन गया। वे धनुष-बाण रखकर गुरु के चरणों में गिर पड़े। दोनों में फिर प्रेम हो गया और २३ दिन का यह घोर युद्ध निष्फल चला गया।

यहाँ पहिली बार हम भार्गव राम के हृदय-परिवर्त्तन की बात पाते हैं। महाभारत में बार बार वे क्षत्रियों के शत्रु कहे गए हैं। यहाँ राजर्षि होत्रवाहन उनके मित्र हैं और वे एक दुःखित कन्या का पक्ष समर्थन कर रहे हैं। यह भी कुछ आश्चर्यजनक है कि राम ने क्षत्रिय भीष्म को अपना शिष्य स्वीकार करके शस्त्र-विद्या में अपने से भी अधिक प्रवीणता सिखा दी। आगे चलकर राम ने कर्ण को इसी लिये शाप दिया है कि उसने क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण के वेश में अस्त्रविद्या सीख ली। उन्होंने यह भी कहा कि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मण के सिवा और किसी को नहीं आ सकता (१२।३।३१), यद्यपि भीष्म ने उसका प्रयोग सफलता के साथ उन पर किया था।

भीष्मपर्व

भीष्मपर्व के साथ महाभारत के युद्धपर्व आरंभ हो जाते हैं जो मूल ग्रंथ के किसी समय बीज रहे होंगे और बाद में जिनको केंद्र बना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अन्य सामग्री की तहें चढ़ती गईं। आदिपर्व के एक श्लोक में महाभारत के मूल-संग्रथन का खाका मिलता है (१।५५।४३)—

एवमेतत्पुरावृत्तं तेषामक्लिष्टकारिणाम्।
भेदो राज्यविनाशश्च जयश्च जयतां वर: ॥

भरतवंशजों में आपसी फूट, राज्यनाश और विजय इस त्रिक का नाम भारत था। प्रचलित संस्करण के अनुसार भीष्मपर्व में चार उपपर्व हैं। जंबूखंडनिर्माणपर्व और भूमिपर्व भौगोलिक प्रकरण हैं। तीसरा भगवद्गीता है जो विश्व-साहित्य की चीज बन गई है। अंतिम भाग के ८० अध्यायों या ४३०० श्लोकों में पहले दस दिनों का युद्ध-वर्णन है। इनमें विषयांतर या उपाख्यान नहीं हैं। हाँ, कहीं कहीं राम जामदग्न्य का नाम आ गया है।

परंतु भगवद्गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अपनी अनंत विभूतियों का वर्णन करते हुए कुछ भृगुओं का उल्लेख किया है जो हमारे लिये रोचक है। इन विभूतियों में कुल नौ मानव हैं। वासुदेव, अर्जुन और व्यास महाभारत के पात्र हैं। देवर्षि नारद, सिद्धों में कपिल मुनि और पुरोहितों में बृहस्पति का ग्रहण है। शेष तीन भार्गव हैं। कवियों में कृष्ण ने अपने आपको शुक्राचार्य कहा है जो असुरों के गुरु थे। शस्त्रधारियों में कृष्ण ने राम को अपना रूप कहा है। यह राम हमारे मत में दाशरथि राम न होकर जामदग्न्य राम हैं। अंत में महर्षियों में कृष्ण ने भृगु को अपना स्वरूप बतलाया है (गीता १०।२५)। और विभूतियाँ तो ठीक ही हैं पर भृगु क्यों सब महर्षियों में श्रेष्ठ कहे गए यह पहेली है। सप्तर्षियों में उनकी गिनती नहीं। हाँ, ब्रह्मा के गोत्रप्रवर्तक बारह पुत्रों में उनकी भी गिनती है। महाभारत में भी भृगु के महत्त्व के बारे में कोई विशेष कथा नहीं मिलती।

द्रोणपर्व

हमारे प्रयोजन के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण भार्गव-अवतरण द्रोणपर्व में पाया जाता है। युद्ध के १३वें दिन अर्जुन की अनुपस्थिति में उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया और वहीं वह मारा गया। इससे पांडवों को बड़ा शोक हुआ। युधिष्ठिर के शोक को दूर करने के लिये व्यास ने एक कथा सुनाई जिसमें नारद ने राजा सृंजय के शोक को षोडश राजाओं के चरित्र का बखान कर दूर किया था। ये चक्रवर्त्ती राजा थे, फिर भी समय आने पर मृत्यु से न बच सके। इस षोडशराजकीय प्रकरण (अ० ५५—७१) के १६ नाम ये हैं--(१) मरुत्त आविक्षित, (२) सुहोत्र आतिथिन, (३) पौरव बृहद्रथ अंगाधिपति, (४) शिबि औशीनर, (५) राम दाशरथि (६) दिलीप-पुत्र भगीरथ, (७) दिलीप ऐलविल, (८) युवनाश्वपुत्र मांधाता, (९) नहुषपुत्र ययाति, (१०) नाभाग-पुत्र अंबरीष, (११) चित्ररथ-पुत्र शशबिंदु, (१२) अमूर्त्तरय-पुत्र गय, (१३) संकृति-पुत्र रंतिदेव, (१४) दौष्यंति भरत, (१५) पृथु वैन्य और अंत में सब से महत्त्वपूर्ण (१६) जमदग्नि-पुत्र भार्गव राम।

अ० ७० में भार्गव राम की आश्चर्यकारक कथा बहुत बढ़ा चढ़ाकर कही गई है। पृथिवी को क्षत्रियशून्य बनाने की प्रतिज्ञा करके राम ने कार्त्तवीर्य का वध किया। फिर ६४००० क्षत्रिय मारे और नाक-कान काटकर दाँत तोड़ दिए, ७००० हैहयों का धुएँ से दम घोट दिया और १०००० को अपने कुठार से मार डाला। उसके बाद, जमदग्नि के पराक्रमी पुत्र ने कश्मीर, दरद, कुंति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग, कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्तक, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त्त, मार्त्तिकावत, शिबि और अन्य देशों के क्षत्रियों को सहस्रों की संख्या में घूम घूमकर मारा और अष्टादशद्वीपा वसुमती को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद यज्ञ में स्वर्ण की वेदी और यह पृथिवी कश्यप को दक्षिणा में दी। इस पृथ्वी को आततायियों से मुक्त करके राम ने अपने अश्वमेध यज्ञ में कश्यप के हवाले कर दिया। इसके बाद वही भार्गवों की फिर विजय-प्रशस्ति सुनाई पड़ती है (७।७०।२०)

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः। (४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१ बार पृथिवी को निःक्षत्रिय बनाकर, सौ यज्ञ करके, राम ने धरती ब्राह्मणों को दी। सप्तद्वीपा पृथिवी पाकर कश्यप ने राम से कहा—हमारी आज्ञा से तुम इस पृथिवी के बाहर निकल जाओ। यह सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने समुद्र को पीछे हटाकर नई भूमि प्राप्त की और वे महेंद्र पर्वत पर बस गए।

इस कथा को शांतिपर्व के षोडशराजीय प्रकरण (अ० २९) से मिलाने पर एक नई बात मालूम होती है। शोकमना युधिष्ठिर गंगा-तट पर बैठे हैं। वे राज्य त्यागकर वन जाना चाहते हैं। अर्जुन की प्रार्थना पर कृष्ण ने युधिष्ठिर को १६ राजाओं का चरित्र सुनाया और यह भी कहा कि नारद ने पहले इसे सृंजय को सुनाया था। १५ कथाएँ लगभग बिलकुल एकसी हैं परंतु द्रोणपर्व की सूची के १६वें "राजा" भार्गव राम का नाम शांतिपर्व में नहीं है। उसकी जगह इक्ष्वाकु के पुत्र सगर का चरित्र है जो वस्तुतः राजा थे। भार्गव राम कभी राजा नहीं रहे और उनको इस सूची में स्थान न मिलना चाहिए। उन्होंने सारी पृथ्वी जीती पर उनका अभिषेक कभी नहीं हुआ। इस सूची में उनका परिगणन अवश्य ही किसी ऐसे कथावाचक की करतूत है जो भार्गवों का विशेष पक्षपाती था। बिना विचारे ही उसने इसे व्यास के सिर मढ़ दिया।

कर्णपर्व

भीष्म और द्रोण की तरह कर्ण भी भार्गव राम का शिष्य था। कर्ण के गुरु की हैसियत से इस पर्व में कई बार राम जामदग्न्य का चलता हुआ उल्लेख है। कर्ण को भार्गव राम से विजय नामक धनुष प्राप्त हुआ जो राम को इंद्र से मिला था। इंद्र ने दैत्य-युद्ध में और राम ने क्षत्रिय-युद्ध में उससे काम लिया और उसकी सहायता से २१ बार पृथ्वी को जीता (८।३१।४६)

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता। (५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७ वें दिन दुर्योधन ने शल्य से कर्ण का सारथि होने को कहा और यह बताया कि कर्ण ने दिव्य अस्त्रों को भार्गव राम से पाया था। इसके बाद दुर्योधन ने कर्ण के गुरु की महिमा को प्रकट करने के लिये एक और कथा सुनाई। दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिये राम महादेव के पास जाकर तप करने लगे (पांडव अर्जुन की तरह)। उस समय असुर बड़े प्रबल थे। महादेव ने राम को उनके साथ लड़ने के लिये कहा (जैसे अर्जुन ने पीछे निवातकवचों से युद्ध किया)। राम ने असुरों को युद्ध में ललकारा और परास्त किया। महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य अस्त्र दिए। कथा में प्रतीति दृढ़ करने के लिये दुर्योधन यह कहना नहीं भूला कि उसने यह बात अपने पिता के सामने एक सत्यवादी ब्राह्मण के मुख से सुनी थी।

अ० ४२ में कर्ण ने स्वयं बताया कि किस प्रकार उसने भार्गव राम के पास ब्राह्मण-वेष में अस्त्रविद्या सीखी और किस प्रकार राम के उसकी जंघा पर सिर रखकर सोते समय एक कीड़े के उसकी जाँघ में छेद कर देने से सारा भेद फूट गया। राम ने कर्ण को शाप दिया कि ऐन मौके पर तुम्हारी विद्या काम न आयगी। अब्राह्मण में ब्रह्म नहीं रह सकता (८।४२।६)—

अब्राह्मणे ब्रह्म नहि ध्रुवं स्यात्।

शल्यपर्व

शल्यपर्व में भार्गवों का उल्लेख कहीं कहीं है। बलराम की तीर्थयात्रा के वर्णन में, जो स्वयं एक विषयांतर है, रामतीर्थ और समंतपंचक जैसे तीर्थों का वर्णन है। रामतीर्थ में फिर वह कथा दुहराई गई है जिसमें कश्यप राम भार्गव के यज्ञ में पुरोहित बने थे (देखिए श्लोक ६।४६।७-८)

सौप्तिकपर्व

१८ अध्यायों के इस छोटे से पर्व में सौप्तिक और ऐषीक नाम के दो उपपर्व हैं जिनमें कहीं पर भार्गवों का उल्लेख नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीपर्व

२७ अध्याय और ८०० श्लोकों के इस छोटे पर्व में मृतकों की श्राद्धक्रिया और स्त्रियों का विलाप है। हम इस बात के कृतज्ञ हैं कि महाभारत के संस्कारकर्त्ताओं ने ऐसे करुण प्रसंग में किसी भार्गव अवतरण को मिलने से बचा लिया।

शांतिपर्व

शांतिपर्व में राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म से संबंध रखनेवाले विषयों का वक्ता-श्रोता के संवाद रूप में बहुत ही विचित्र और मूल्यवान् रोचक संग्रह है। इसमें भार्गव-सामग्री काफी है।

अ० २ में भार्गव राम का नाम आता है। गंगा-तट पर नारद युधिष्ठिर को कर्ण की राम से विद्या-प्राप्ति का हाल कुछ विस्तार से सुनाते हैं। कर्ण ने अपने को ब्राह्मण और भार्गव कहकर राम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया। कर्ण की जाँघ को छेदनेवाले कीड़े को कर्णपर्व में इंद्र का रूप कहा गया है पर यहाँ उसे दंश राक्षस कहा है जो भृगु की पत्नी को हर ले जाना चाहता था। इस देवगुह्य कथा का प्रभाव यह हुआ कि युधिष्ठिर शोक दूर करके राजधानी में लौट आए और मृतकों की श्राद्धक्रिया करके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

इसके बाद कृष्ण ने ध्यान के द्वारा कुरुक्षेत्र में मृत्युशय्या पर पड़े हुए भीष्म का प्रत्यक्ष किया और पांडवों को लेकर उनसे मिलने के लिये वे युद्धभूमि को चले। भार्गव तीर्थ समंतपंचक का प्रसंग आ जाने से फिर राम के पराक्रम की कथा दुहराई गई है। कृष्ण रामह्रदों को दिखलाते हुए कहते हैं (१२।४८।६)—

त्रिःसप्तकृत्वो वसुधां कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
इहेदानीं ततो रामः कर्मण्ये विरराम ह॥ (६)

युधिष्ठिर को क्षत्रिय-वध की इस कथा के सुनने में बड़ा रस आता हुआ जान पड़ता है यद्यपि पहले भी वे कई वक्ताओं से इसे सुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हैं, और वे अपना कुछ संशय भी कृष्ण से दूर करा लेना चाहते हैं (१२।४८।१०)—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा।
रामेणेति तथात्थ त्वमत्र मे संशयो महान्॥ (७)

युधिष्ठिर के संशय को हटाने के लिये कृष्ण भार्गव राम की पूरी कुंडली खोलकर बड़े विस्तार से उनके जन्म, क्षत्रियों के नाश और उनके पुनः संवर्द्धन की कथा सुनाते हैं। आरण्यक-पर्व में अकृतव्रण के द्वारा कही हुई कथा का यह कृष्ण-प्रोक्त संस्करण है। पहली कथा में सत्यवती के ससुर ने पुत्र-जन्म के लिये चरु बनाया था। यहाँ स्वयं ऋचीक ने उसे तैयार किया। दूसरा विसंवाद यह है कि आरण्यक-पर्व में कार्त्तवीर्य अर्जुन ने जमदग्नि की होमधेनु के बछड़े का हरण किया था। यहाँ कार्त्तवीर्य को धर्मात्मा और ब्राह्मणों का भक्त कहा गया है। उसके पुत्र दंभी और नृशंस थे और उन्होंने जमदग्नि की कामधेनु का वत्सापहरण किया। यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन सा वर्णन सत्य के निकट था। इसके बाद स्वयं कृष्ण भार्गवों जैसे गौरवशाली स्वर में राम की पराक्रम-प्रशस्ति को दोहराते हैं (१२।४९।६४)—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
दक्षिणामश्वमेधांते कश्यपायाददत्ततः॥ (८)

इस प्रकार मानों इस कथा पर स्वयं श्रीकृष्ण की स्वीकृति की छाप लग जाती है।

कौरव, पांडव अथवा श्रीकृष्ण जैसे दिग्गज क्षत्रियों के लिये कदाचित् यह एक रहस्य रहा होगा कि २१ बार नाश को प्राप्त हो जाने पर भी फिर क्षत्रियों का प्रादुर्भाव कैसे हो गया। पिछले अध्यायों में कई बार यह कहा गया है कि ब्राह्मणों ने क्षत्रिय-स्त्रियों के साथ प्रजोत्पत्ति की और वह संतान 'पाणिग्राहस्य तनयः' (१।९८।५, पुत्र का पिता वह होता है जिसने विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया हो) इस वैदिक न्याय के अनुसार क्षत्रिय कहलाई। श्रीकृष्ण इससे सहमत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं। वे इस घटना से भी अनभिज्ञ दिखलाए गए हैं। उनका कहना है कि इस पृथ्वी ने क्षत्रियों को जहाँ-तहाँ छिपाकर उनकी रक्षा की। कुछ हैहय क्षत्रिय स्त्रियों में छिप गए। कुछ पौरवों ने ऋक्षवान् पर्वत पर ऋक्षों के यहाँ शरण ली। कुछ वनों में गोसंघ के बीच में, कुछ गोष्ठों में बछड़ों के बीच में, कुछ समुद्र में और कुछ गृद्ध्रकूट पर्वत पर रहनेवाले भेड़ियों के बीच में छिपकर आत्मरक्षा कर सके। जब कश्यप ने राम को इस पृथ्वी पर से निकाल दिया तब उन्होंने फिर क्षत्रिय-कुलों की प्रतिष्ठा की। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वर्त्तमान क्षत्रिय-वंशज उन्हीं प्राचीन क्षत्रियों के पुत्र-पौत्र थे (१२।४६।८८ प्रभृति)।

मोक्षधर्मपर्व के आरंभ में भृगु-भारद्वाज-संवाद के नाम से एक बड़ा प्रकरण (अ० १८२-१६२) है, जिसमें निम्नलिखित विषयों पर तत्कालीन ज्ञान का सारांश संगृहीत है—(१) महाभूत, (२) जीवन और मृत्यु, (३) वर्ण-व्यवस्था, (४) पाप और पुण्य, (५) आश्रमधर्म और (६) परलोक। इससे प्रकट है कि यहाँ भार्गवों के आदि-पुरुष भृगु को हिंदू अध्यात्म, समाजशास्त्र, परलोक विद्या और धर्मनीति का ज्ञाता और प्रवक्ता माना गया है। शांतिपर्व अ० ३३६ श्लोक ८४ और १०३ में भार्गव राम को विष्णु का अवतार कहा गया है। इनमें से पिछला श्लोक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रक्षिप्त जान पड़ता है। इससे यह भी विदित होता है कि महाभारत में अवतारवाद की कल्पना का स्वरूप अभी तक अस्फुट था और भार्गव राम के अवतार होने की कल्पना महाभारत को मान्य नहीं थी।

अनुशासनपर्व

किसी अज्ञात कारण से भार्गव-सामग्री अनुशासनपर्व में सबसे अधिक है। अ० ४ में हमें तीसरी बार जमदग्नि-जन्म की कथा मिलती है। गाधिकन्या सत्यवती से ऋचीक का विवाह, सत्यवती और उसकी माता को चरु-भक्षण के द्वारा पुत्रप्राप्ति का वरदान, चरु-परिवर्त्तन और उसके फल-स्वरूप गाधि की पत्नी के ब्राह्मण गर्भ और सत्यवती के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रिय गर्भ की संभावना और अंत में सत्यवती की प्रार्थना से उसके पौत्र की क्षत्रियत्व-प्राप्ति—ये बातें आरण्यक, शांति और अनुशासन तीनों पर्वों में समान हैं। शांति और अनुशासन पर्वों की कथा में केवल इतना भेद है कि इनमें चरु के निर्माता और वरदान के देनेवाले स्वयं ऋचीक हैं।

इस पर्व के १४।२७३ श्लोक में भार्गव राम का नाम मात्र आने से कथाकार के मुख से चट पुराना श्लोक निकल पड़ता है—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता।
जामदग्न्येन गोविंद रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ (६)

अ० ३० में भृगु के वचन-मात्र से क्षत्रिय वीतहव्य के ब्राह्मण बन जाने की कथा है। शर्याति के वंशज वत्स के हैहय और तालजंघ नामक दो पुत्र थे। हैहय के १०० पुत्रों ने काशिराज हर्यश्व को आक्रमण करके मार डाला। हर्यश्व के बाद उनके पुत्र सुदेव राजा हुए और वे भी हैहयों से मारे गए। उनके उत्तराधिकारी दिवोदास ने गंगा के उत्तर तट पर और गोमती के दक्षिण तट पर वाराणसी नगरी बसाई। हैहयों से हारकर वे अपने पुरोहित भरद्वाज के यहाँ पहुँचे जिन्होंने यज्ञ द्वारा राजा के लिये प्रतर्दन नामक पुत्र प्राप्त किया। प्रतर्दन ने हैहयों को पराजित किया। प्रतर्दन के डर से भागकर वीतहव्य भृगु के आश्रम में छिप गए। प्रतर्दन ने छिपे हुए वीतहव्य को वापिस माँगा। भृगु ने वीतहव्य के प्राण बचाने के लिये उत्तर दिया कि इस आश्रम में केवल ब्राह्मण हैं। सत्यवादी भृगु के वचन से वीतहव्य ब्राह्मण बन गए। वीतहव्य के १५ वंशजों के नाम दिए गए हैं। उनके पुत्र गृत्समद थे जिनकी ११वीं पीढ़ी में प्रमति हुए। प्रमति के पुत्र रुरु थे और रुरु के पुत्र शौनक हुए जिनसे शौनकों की प्रसिद्धि हुई।

अ० ४० में भीष्म ने स्त्रियों के रूपाकर्षण और दुर्बलता का वर्णन करते हुए अपने समर्थन में भार्गव विपुल की कथा (विपुलोपाख्यान अ० ४०-४३) सुनाई है जिसमें सम्मोहन योग की शक्ति का भी उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा यह है कि ऋषि देवशर्मा की पत्नी रुचि अत्यंत रूपवती थीं। उन्होंने अपने रूप से इंद्र का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। एक बार देवशर्मा को यज्ञ के लिये अपने आश्रम से बाहर जाना पड़ा। रुचि की ओर से आशंकित होकर उन्होंने अपने प्रिय शिष्य भार्गव विपुल से कहा कि हे पुत्र! तुम इसकी रक्षा करना। विशेषकर छद्मवेषधारी इंद्र की कामुकता से इसे बचाना। विपुल ने अपनी यौगिक शक्ति से रुचि के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके सतीत्व की रक्षा करने का निश्चय किया। इंद्र समय पर आकर रुचि के प्रति हाव-भाव प्रकट करने लगा। इच्छा रहते हुए भी रुचि, भार्गव विपुल के प्रभाव से, इंद्र का स्वागत न कर सकी। इंद्र रुचि के इस व्यवहार से पहले तो चकित हुआ पर पीछे विचार करने पर उसने सब मर्म जान लिया। इसी समय विपुल ने रुचि के शरीर में से बाहर निकल कर इंद्र को लज्जित किया और वह खिसक गया। भार्गव मार्कंडेय ने यह कथा भीष्म को और भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाई। आज तक एक भार्गव ही स्त्री को पतन से बचा सका है और वह था भार्गव विपुल (१३।४७।२७)—

> तेनैकेन तु रक्षा वै विपुलेन कृता स्त्रियाः।
> नान्यः शक्तस्त्रिलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृप योषितम्॥

अ० ५० से ५६ तक फिर एक भार्गव कथा है। इस च्यवनोपाख्यान के दो भाग हैं। अ० ५०-५१ में गौओं की महिमा का वर्णन है। शेष ५ अध्यायों में वही भार्गव राम की जन्म-कथा है जिसमें वही ब्राह्मण-क्षत्रिय-मिश्रित उत्पत्ति का विषय है। इसी पर्व के अ० ४ में विश्वामित्र और जामदग्न्य राम के, जो गुण कर्म स्वभाव में एक दूसरे से विपरीत थे, जन्म लेने की कथा है। वही इस प्रकरण में फिर है। युधिष्ठिर का राम-संबंधी अमिट कुतूहल उन्हें भीष्म से पूछने के लिये प्रेरित करता है। भगवन्! जामदग्न्य राम के संबंध में मेरे कुतूहल को शांत कीजिए। वे तो ब्राह्मण-कुल में जन्मे थे, उन्होंने क्षत्रियोचित कर्म कैसे किए? विस्तार से उनका हाल कहिए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी बताइए कि कुशिकों के क्षत्रिय-कुल में जन्म लेकर किस प्रकार विश्वामित्र ब्राह्मण हो गए ?

इसके उत्तर में भीष्म जी भार्गव च्यवन की कथा सुनाते हैं। च्यवन ने अपनी दिव्य दृष्टि से आनेवाली घटनाओं को जान लिया कि किस प्रकार कुशिक वंश की असावधानी से भृगु-कुल में जन्म लेकर भी राम क्षत्रियों जैसा नृशंस कार्य करेंगे। च्यवन राजा कुशिक के पास इस इच्छा से पहुँचे कि उसकी परीक्षा लें और यदि वह उन्हें क्रोध का अवसर दे तो उसे और उसकी संतान को नष्ट करने के लिये शाप दे डालें। राजा कुशिक और उसकी रानी ने च्यवन की बड़ी आवभगत की। भोजन करके २१ दिन तक ऋषि सोते रहे और राजा रानी बिना खाए-पिए उनकी सेवा करते रहे। एकाएक ऋषि उठे और चल दिए। राजा-रानी ने डरकर उनका पीछा किया पर वे चंपत हो गए। बहुत ढूँढ़ने के बाद उन्होंने लौटकर देखा तो ऋषि को पलँग पर सोते पाया। ऐसी कितनी ही चालें चलने के बाद एक दिन राजा और रानी को च्यवन ने एक भारी रथ में जोत दिया और उस पर बैठकर लोहे के कोड़े से उनको मारते हुए और राज-कोष लुटाते हुए वे नगर में निकले, पर राजा और रानी के मुख पर विकार का चिह्न तक न आया[1]। अंत में ऋषि अपनी प्रसन्नता प्रकट करके वन में चले गए और दूसरे दिन राजा-रानी को वन में बुलाया। ४२ दिन तक खेद उठाए हुए दंपती ने रात्रि को विश्राम लिया और अगले दिन वे वन में पहुँचे। वहाँ उन्होंने इंद्रभवन के समान एक प्रासाद देखा जो अदृश्य हो गया और वहाँ अकेले च्यवन ऋषि बैठे दिखाई दिए। इस समय राजा को ब्राह्म तेज की महिमा ज्ञात हुई। च्यवन ने सचाई के साथ राजा को बता दिया कि उनका उद्देश्य परीक्षा लेना था और वरदान दिया कि कुशिक के वंश में आगे चलकर एक पुत्र ब्राह्म तेज से युक्त होगा। च्यवन ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भृगुओं के ही

१—इससे बहुत-कुछ मिलती-जुलती कथा कृष्ण और दुर्वासा की है। देखिए अनुशासनपर्व अ० १५९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज से कुशिक के पोते विश्वामित्र अग्नि-समान तेजवाले तपस्वी ब्राह्मण होंगे (१३।५५।३२)—

............भृगूणामेव तेजसा।
पौत्रस्ते भविता विप्रस्तपस्वी पावकद्युतिः॥

इस उपाख्यान के अंतिम अध्याय में च्यवन की भविष्यवाणी के रूप में भृगुओं का उत्पीड़न, और्व, ऋचीक और जमदग्नि की कथा कुशिक की पोती और गाधि की पुत्री सत्यवती के साथ ऋचीक का विवाह, सत्यवती और उसकी माता को भृगु के द्वारा दिए जानेवाले वरदान, चरु और वृक्षों का परिवर्त्तन एवं विश्वामित्र आदि के संबंध की सारी बातें दुहराई गई हैं। महाभारत में रामजन्म-संबंधी इस कथा की यह चौथी आवृत्ति है। इसी पर्व के अ० ४, शांतिपर्व अ० ४८ और आरण्यकपर्व अ० ११५-११७ में यह पहले आ चुकी है।

कुछ अध्याय आगे भीष्म के युधिष्ठिर को स्वर्ण-दान की महिमा बताने के प्रसंग में फिर भार्गव राम आ जाते हैं। भीष्म के पितरों ने उनसे कहा था कि स्वर्ण के दान से देनेवाला पवित्र होता है। भार्गव राम को वशिष्ठ आदिक ऋषियों ने यही उपदेश दिया था। भार्गव-प्रशस्ति को दुहराने के लिये यह एक अवसर भी काम में ले लिया गया है (१३।८४।३१)—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा।
ततो जित्वा महीं कृत्स्नां रामो राजीवलोचनः॥ (१०)

इससे अगले अ० ८५ में भृगु, अंगिरा और कवि के जन्म की कथाएँ हैं। इनको अनेक वंशों और जातियों के उत्पादक प्रजापति कहा गया है।

पाठकों को यह बात कुछ विचित्र मालूम होगी कि हमें छत्र और पादुका भी भृगुओं की कृपा से मिले हैं। एक बार जमदग्नि दूर के निशाने पर बाण चलाने का अभ्यास कर रहे थे। रेणुका तीर उठाकर दे रही थीं। कड़ी धूप के कारण रुक रुककर आने से उन्हें देर लग रही थी। तब जमदग्नि ने सूर्य को बाण मारकर नीचे गिराना चाहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य ने ब्राह्मण के वेश में आकर उनसे क्षमा-याचना की और धूप से बचाने के लिये छाता और जूते दिए। महाभारत के बाहर यह कथा और कहीं नहीं मिलती। अ० ९८ में भी भीष्म ने भार्गव शुक्र और बलि का एक संवाद सुनाया है जिसमें देवताओं को धूप, दीप और पुष्प आदि देने का माहात्म्य कहा गया है।

द्रोणपर्व के षोडशराजीय प्रकरण का उल्लेख करते हुए हम बता चुके हैं कि किस प्रकार सगर की जगह जामदग्न्य राम का चरित्र सन्निविष्ट करके उस प्रकरण पर भार्गव रंग चढ़ाया गया है। यहाँ नहुष के स्वर्ग से गिरने की कथा में भी पाठक देखेंगे कि किस प्रकार कथा में रफूगरी करके उसके ताने-बाने में भार्गवपन मिला दिया गया है।

उद्योगपर्व अ० ११-१७ तक एवं शांतिपर्व अ० ३४२ में नहुष की सीधी सादी कथा है। इसके अनुसार नहुष ने घमंड में चूर होकर ऋषियों से अपनी पालकी उठवाई। अगस्त्य के सिर में लात मारने के कारण उनके शाप से नहुष को साँप बनना पड़ा। मालूम होता है कि इस सीधी कथा में स्वयं भारत-चिंतकों को ही असंगति दिखाई दी। नहुष को ब्रह्मा से वरदान मिला था कि वह जिसको देख देगा वह निस्तेज हो जायगा। ऐसी दशा में अगस्त्य का शाप नहुष को कैसे लगा यह बात समझ में आने से रह जाती है।

अनुशासनपर्व अ० ९९-१०० में इस कथा का सुधारा हुआ रूप मिलता है। अगस्त्य अत्याचारी नहुष का पतन चाहते हैं पर कर नहीं पाते। उन्होंने भृगु के साथ मिलकर तिकड़म की। भृगु ने दिव्य दृष्टि से जान लिया कि अमुक दिन नहुष अगस्त्य को लात से ठुकराएगा। उन्होंने अगस्त्य से कहा कि हम अपने प्रभाव से तुम्हारी जटाओं में छिपकर बैठे रहेंगे। निदान ऐसा ही हुआ। अगस्त्य को नहुष ने अपने रथ में जोता। भृगु ने बड़ी सावधानी से अपने आपको नहुष के साथ आँख मिलाने से बचाए रक्खा, क्योंकि वे ब्रह्मा के वरदान को जानते थे। नहुष ने अगस्त्य के सिर पर लात से प्रहार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूट भृगु ने, जो अब तक नहीं देखे गए थे, क्रोध में भुनकर उसे शाप दिया और अत्याचारी नहुष साँप बनकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इसके बाद अ० १५६ में ब्राह्मणों की महिमा बताते हुए च्यवन की कथा दुहराई गई है। कथा लगभग वही है जो आरण्यकपर्व अ० १२३ में युधिष्ठिर लोमश से सुन चुके हैं। अश्विनीकुमारों द्वारा च्यवन की नेत्रचिकित्सा और पुनर्यौवन-प्राप्ति, च्यवन का उनको सोम-पान में भाग दिलाने की प्रतिज्ञा करना, च्यवन के यज्ञ में अश्विनीकुमारों का निमंत्रण और इंद्र का सोमपान अस्वीकार करना, इंद्र का वज्र-प्रहार और च्यवन का उसको स्तंभित करना, मद नामक राक्षस की उत्पत्ति और अंत में इंद्र की क्षमा-याचना और अश्विनीकुमारों का च्यवन की कृपा से सोमपीथी बनना, ये समस्त अभिप्राय दोनों कथाओं में समान हैं।

अश्वमेधपर्व

च्यवन के उपाख्यान की प्रतिध्वनि अश्वमेधपर्व के प्रारंभ में ही फिर मिलती है। अ० ९ में अग्नि, च्यवन के द्वारा इंद्र की हेठी का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं (१४।९।३१)—

यत्र शर्यातिं च्यवनो याजयिष्यन् सहाश्विभ्यां सोममगृह्णादेकः।
तं त्वं क्रुद्धः प्रत्यषेधीः पुरस्ताच्छर्यातियज्ञं स्मर तं महेंद्र[1]॥

अग्नि को भृगु के द्वारा अपने अपमान की कथा भी भूली न होगी जब उसने पुलोमन् असुर से भृगुपत्नी पुलोमा का कुछ भेद खोल दिया था।

अनुगीतापर्व में (अ० २९, ३०) भार्गव राम के द्वारा क्षत्रियों के नाश का फिर उल्लेख है परंतु अबकी बार इसका उपयोग मानवीय जीवन की अनित्यता सिखाने के लिये किया गया है। राम के पितरों ने उनसे कहा कि राजाओं की विजय से बढ़कर आत्म-विजय है। यही तपस्वियों का आदर्श है। यह सुनकर भार्गव राम घोर तप करने में प्रवृत्त हो गए।

१—अर्थात् शर्याति को यज्ञ कराते हुए च्यवन ने अश्विनीकुमारों को जब सोम का ग्रहण कराया, तब हे इंद्र! तुमने उस शर्याति-यज्ञ का विरोध किया था, उसका स्मरण करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत की अंतिम भार्गव-कथा इस पर्व का उत्तंकोपाख्यान (अ० ५३-५८) है।

भीष्म की मृत्यु के बाद कृष्ण द्वारका को लौट रहे हैं। मार्ग में उन्हें उत्तंक ऋषि मिले। यह जानकर कि कृष्ण कौरव-पांडवों में मेल न करा सके, उत्तंक उन्हें शाप देने पर उतारू हो गए। श्रीकृष्ण ने उत्तंक को अपने दिव्य जन्म और कर्म का ज्ञान कराकर शांत किया और बतलाया कि मदोन्मत्त कौरवों ने ही उनके संधि के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उत्तंक की प्रार्थना पर कृष्ण ने उनको अपना ऐश्वर रूप दिखलाया।

यह सुनकर चतुर जनमेजय ने वैशंपायन से पूछा कि उत्तंक ने ऐसा कौन सा तप किया था जो उन्होंने विष्णु को भी धर्षित करने का साहस किया। वैशंपायन ने कहा कि अपनी अगाध गुरुभक्ति के कारण उत्तंक को यह शक्ति प्राप्त हुई। उन्होंने बतलाया कि नरमांस-भक्षी राजा सौदास से बचकर उत्त ंक ने सौदास की रानी मदयंती के कर्ण-कुंडल अपने गुरु गौतम को दक्षिणा में देने के लिये प्राप्त किए। मार्ग में एक नाग ने उनको हर लिया और उत्त ंक नागलोक से उन्हें फेर लाए।

यह उत्त ंकोपाख्यान आदिपर्व अ० ३ में दिए हुए पौष्यपर्व नामक गद्य-कथा का ही श्लोकबद्ध संस्करण है। दोनों में थोड़ा सा अंतर भी है। दोनों के पात्र असमान हैं। आदिपर्व में उत्त ंक के गुरु वेद हैं। यहाँ पर उन्हें अहल्या का पति गौतम कहा गया है। आदि में राजा का नाम पौष्य है। यहाँ उसे सौदास कल्माषपाद कहा गया है जो ऋषि के शाप से नरमांसभोजी बन गया था। आदि में सर्प का नाम तक्षक है। यहाँ कोई नाम नहीं दिया गया। अश्वमेधपर्व की कथा में उत्त ंक को कई बार भार्गव कहा गया है। आदिपर्व में ऐसा नहीं है। भार्गव होने के नाते ही उत्त ंक-कथा इस निबंध में गृहीत हुई है।

आदिपर्व में दी हुई उत्त ंक-कथा को एक पुछल्ले के रूप में न छोड़कर प्रवीण भारत-चिंतकों ने उसे महाभारत के ताने-बाने के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबद्ध करने का प्रयास किया है। गद्यात्मक पौष्यपर्व के अंतिम श्लोकात्मक भाग में यह कहा है कि नागलोक से लौटकर उत्तंक सीधे पांडव जनमेजय के पास हास्तिनपुर पहुँचे और परीक्षित को डसनेवाले तक्षक सर्प को दंड देने के लिये राजा से प्रेरणा की। इसी से जनमेजय ने सर्प-सत्र करने की ठानी और इसी यज्ञ में वैशंपायन ने प्रथम बार महाभारत का पारायण किया। महाभारत का जो रूप इस समय प्राप्त है उसके विषय में प्रसिद्ध है कि सूत उग्रश्रवा ने उसे शौनक को ठीक उसी रूप में सुनाया था जिस रूप में सूत ने स्वयं उसे व्यास-शिष्य वैशंपायन के मुख से जनमेजय के नाग-यज्ञ में सुना था। भार्गव उत्तंक ही उस यज्ञ के प्रेरक थे। इस कारण इस ग्रंथ के रूप-निर्माण के संबंध में उनका ऋण भी हमें मान्य है। महाभारत का यही अंतिम भार्गव-उपाख्यान है।

महाभारत में कुछ और भी भार्गव-कथाएँ हैं जिनके संबंध में विचार अभी जान-बूझकर हमने स्थगित कर रक्खा था। आदिपर्व के चौथे उपपर्व को, जिसका नाम पौलोमपर्व है, वस्तुत: भार्गव-उपाख्यानों का एक गुच्छा ही कहना चाहिए।

महाभारत का प्रारंभ दो स्थलों से माना जाता है। पहला स्थल आदि पर्व का पहला अध्याय है जिसमें उग्रश्रवा सूत (किन्हीं प्रतियों में उनका नाम सौति भी है) नैमिषारण्य में कुलपति शौनक के आश्रम में आकर उनके द्वादशवर्षीय सत्र में सम्मिलित होते हैं और वहाँ ऋषि लोग उनसे महाभारत सुनाने की प्रार्थना करते हैं (१।१।१८ प्रभृति)—

जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशंपायन उक्तवान्।
यथावत्स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया॥
वेदैश्चतुर्भिः समितां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामो धर्म्यां पापभयापहाम्॥

इस प्रार्थना के अनुसार सूतजी पहले कुछ मंगल श्लोकों का पाठ करते हैं (१।१।२०)—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥

इसके बाद कुछ उपोद्घात प्रारंभ होता है परंतु थोड़ी देर के बाद ही यह सूत्र टूट जाता है।

अ० ४ में फिर ग्रंथ का आरंभ मिलता है जिसमें पहले आरंभ को बिलकुल दृष्टि से ओझल कर दिया गया है। सूत फिर उसी तरह आते हैं। प्रसंग भी वैसा ही है पर अबकी बार घटना-क्रम में अंतर है। उपस्थित ऋषि लोग कथा सुनाने के लिये सूत से प्रार्थना न करके कुलपति शौनक के आने तक उन्हें ठहराते हैं। अगले अध्याय (५) में नित्यकृत्यों से निवृत्त होकर कुलपति भी आ जाते हैं। पर वे सूतजी से महाभारत सुनाने के लिये नहीं कहते, जैसा ऋषियों ने कहा था। विचित्र बात है कि शौनक सबसे पहले भार्गवों का इतिहास सुनाने की प्रार्थना करते हैं (१।५।३)—

तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम् ।
कथयस्व कथामेतां कल्याः स्म श्रवणे तव ॥

सूत तुरंत इंद्र, अग्नि, मरुत् देवों से अभिपूजित उत्तम भृगुकुल का इतिहास सुनाने लगते हैं (१।५।५)। यहाँ भार्गव-प्रभाव स्पष्ट और असंदिग्ध है। आठ अध्यायोंवाले (५–१२) पौलोमपर्व का महाभारत की मुख्य कथा से कुछ संबंध नहीं। यह स्पष्ट विषयांतर है जिसमें भार्गवों का गौरव गाने के लिये उनकी एक विशेष शाखा का—जिसमें भृगु, च्यवन, प्रमति, रुरु और शौनक संबंधित हैं—संक्षिप्त इतिहास है। इस शाखा का महत्त्व और महाभारत से इसका संबंध अभी स्पष्ट होगा।

इस पौलोमपर्व के एक प्रक्षिप्त श्लोक में भार्गवों के आदि-पुरुष भृगु को ब्रह्मा के द्वारा वरुण के यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न कहा गया है। आगे (१।६।४०) इन्हीं भृगु को ब्रह्मा के हृदय से निकला हुआ कहा गया है। अ० ५-६ में भृगुपत्नी पुलोमा के अपहरण की कथा है जिसके अंत में बेचारे अग्नि को स्वल्प दोष के लिये भी सर्वभक्षी बन जाने का शाप मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद अ० ८ में प्रमति के पुत्र भार्गव रुरु और प्रमद्वरा की कथा है। यह मेनका अप्सरा की कन्या थी। रुरु उस पर आसक्त हुए। विवाह से पहले ही साँप के डस लेने से प्रमद्वरा प्राणशून्य हो गई। किंतु भार्गव रुरु ने अपने तपोबल से अपनी आयु का आधा भाग देकर उसे जीवित कर लिया। दोनों का विवाह हो गया। रुरु ने सब साँपों को नष्ट कर देने की प्रतिज्ञा की। इसका सादृश्य जनमेजय से है जिनके पिता परीक्षित साँप से डसे जाने से मारे गए थे। एक दिन रुरु को डुंडुभ जाति का एक पुराना निरापद साँप मिला (अ० ९) जिसकी प्रार्थना से रुरु ने उसे न मारा। यह सर्पवेश में कोई शापग्रस्त ऋषि थे (अ० १०)। ऋषि ने कहा—अहिंसा ब्राह्मण का परम धर्म है। जनमेजय ने भी पहले सर्पयज्ञ करके साँपों को निर्वंश करना चाहा था पर वे ब्राह्मण आस्तीक की कृपा से बच गए (अ० ११)। इसके बाद रुरु ने अपने पिता प्रमति से जनमेजय के नागयज्ञ की कथा सुनी (अ० १२)। यही सर्प-सत्र की कथा महाभारत का आस्तीक-पर्व (आदिपर्व अ० १३-५३) है, जिसे प्रमति ने अपने पुत्र रुरु को और कालांतर में वैसे का वैसा ही सूत ने शौनक को सुनाया।

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि आदिपर्व अ० ४ से १२ तक का संबंध भार्गव-शाखा-विशेष से है। न तो उसमें महाभारत का नाम तक है और न इसके बाद के ४१ अध्यायोंवाले आस्तीक-पर्व में महाभारत का कहीं जिक्र है। भार्गव-कथाएँ और सर्पसत्र की कथा सुन लेने के बाद शौनक ने अंततोगत्वा कृष्ण द्वैपायन-विरचित उस महाभारत को सुनने की इच्छा प्रकट की, जिसे वैशंपायन ने जनमेजय को, उसके सर्पयज्ञ के बीच में, विधिवत् सुनाया था (१।५३।३२ प्रभृति)—

> महाभारतमाख्यानं पाण्डवानां यशस्करम्।
> जनमेजयेन यत्पृष्टः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥
> श्रावयामास विधिवत्तदा कर्मान्तरेषु सः।
> तामहं विधिवत्पुण्यां श्रोतुमिच्छामि वै कथाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत में विद्यमान भार्गव-सामग्री का पर्यवेक्षण अब समाप्त होता है[१]।

इस लंबे विवेचन के बाद भी भार्गवों से संबंध रखनेवाले अगणित छिटफुट उल्लेख छूट गए हैं। अन्य ऋषियों के साथ सभाओं में, उत्सवों में, राजकार्यों में अथवा युद्धों के वर्णन में भार्गवों का नाम बराबर लिया गया है। महाभारत के पात्रों के शौर्य, वीर्य, तेज और बुद्धिमत्ता की उपमा देने के लिये योग्य उपमान भार्गवों में से लिए गए हैं। शुक्र के समान बुद्धिमान्, भार्गव राम के समान वीर, च्यवन और और्व के समान तेजस्वी एवं सुकन्या के समान पतिव्रता, इन उपमाओं की पुनरावृत्ति महाभारत का ईप्सित विषय है। जान पड़ता है कि भार्गवों के उदात्त नाम और गुणरूपी उज्ज्वल प्रभामय रत्नों का स्वच्छंद प्रयोग महाभारत-रूपी विशाल भवन के चित्रों को आलोकित और शोभायमान बनाने के लिये किया गया है।

उपसंहार

महाभारत में सुरक्षित कथाओं के आधार पर यह वेदितव्य है कि भार्गव लोग ब्राह्मण कुल से संबद्ध थे जिनका संबंध क्षत्रियों से बहुत घनिष्ठ था। अन्य कोई ब्राह्मणकुल इस हद तक क्षत्रियों के संपर्क में नहीं आया। यह संबंध विवाह की सीमा तक पहुँचा हुआ था। जैसे राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या से च्यवन ने विवाह किया। कान्यकुब्ज के राजा गाधि की पुत्री और प्रख्यात विश्वामित्र की बहन सत्यवती का ऋचीक ने पाणिग्रहण किया। जमदग्नि की पत्नी रेणुका

१—निम्नलिखित ऋषियों की गिनती भी शायद भृगुओं में ही होनी चाहिए—(१) आरण्यकपर्व में आए आर्ष्टिषेण, (२) अनुशासन में उल्लिखित गृत्समद जिन्हें स्पष्ट भार्गव कहा गया है, (३) उत्तंक के गुरु और जनमेजय के पुरोहित वेद (४) व्यास के शिष्य पैल, और (५) अणीमांडव्य कथावाले मांडव्य। ययाति के पुत्र भार्गवी देवयानी के गभ से संभूत यदु के वंशज होने के कारण कृष्ण का भी भार्गवों से दूर का संबंध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अयोध्या के राजा प्रसेनजित् की कन्या कही जाती है। भार्गवी देवयानी ने राजा ययाति से विवाह किया। ब्राह्मण-साहित्य में प्रतिलोम विवाह का यह एकमात्र उदाहरण मिला है। राजा वीतिहव्य एक भृगु के द्वारा ब्राह्मण बना लिए गए और उनकी संतति भार्गव कहलाई। इसके विपरीत यह भी सत्य है कि कुछ प्राचीन भार्गवों का क्षत्रियों के साथ घोर संघर्ष हुआ। राम जामदग्न्य और क्षत्रियों के वैर की कथा कितनी ही बार ऊपर आ चुकी है। और्व और जमदग्नि का भी क्षत्रियों से विरोध हुआ जो ऊपर लिखा जा चुका है।

इन द्वंद्वों में भार्गवों को क्रोधी, अभिमानी, अक्खड़ और प्रतिरोधी चित्रित किया गया गया है। साथ ही सूतों की दृष्टि में वे अपने तप और मंत्रबल के कारण सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् भी हैं। यौगिक सिद्धियों के कारण भार्गव लोग पृथ्वी पर साक्षात् देवता या उनसे भी अधिक थे। भृगु ने अग्नि को शाप दिया और देवराज की पदवी पाए हुए नहुष को भी शाप दिया। च्यवन ने इंद्र की भुजा को स्तंभित कर दिया जो वैदिक आर्यों के श्रेष्ठतम देव थे। जमदग्नि बाण मारकर सूर्य को ही पृथ्वीतल पर गिरा देते। भार्गव उत्तंक भागवतों के सर्वश्रेष्ठ देवता श्रीकृष्ण को ही शाप देने लगे थे। पृथ्वी के राजा तो भार्गवों के सामने भुनगे के समान थे। सशक्त हैहय लोग बालक और्व के सामने काँपने लगते हैं और उसके तेज से अंधे होकर दया के लिये गिड़गिड़ाने लगते हैं। राजा कुशिक च्यवन के चरणों में गिरकर चुपचाप सब प्रकार की दुर्गति सहते हैं।

भार्गवों के आदि-पुरुष भृगु की गिनती प्रजापतियों में है। दक्ष आदि अन्य प्रजापति ब्रह्मा के पृथक् पृथक् अंगों से उत्पन्न हुए पर भृगु साक्षात् उनके हृदय को भेदकर प्रकट हुए। अन्यत्र भृगु को महर्षियों में श्रेष्ठतम कहा गया है यद्यपि उनका नाम सप्तर्षियों में भी नहीं आता।

परंतु हमारे ग्रंथकार के सबसे प्रिय भार्गव तो जामदग्न्य राम हैं। थोड़ा सा भी मौका मिलने पर उनके पराक्रमशाली चरित्र का वर्णन किए बिना सूतजी से नहीं रहा जाता। उनके दिग्गज स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की छाया संपूर्ण महाभारत पर पड़ी है। अभी तक उनको पूर्ण अवतार का स्वरूप नहीं प्राप्त हुआ। हाँ, कहीं कहीं उस दिशा में कुछ प्रयत्न अवश्य पाया जाता है। अकेले उन्होंने सारी पृथ्वी को जीत लिया। उनके घोर तप की महिमा बड़ी विचित्र है। उन्होंने २१ बार पृथ्वी क्षत्रियों के भार से मुक्त करके कश्यप को दान में दे दी। शस्त्रधारियों में अग्रणी भार्गव राम कौरव-सेना के तीन महारथी भीष्म, द्रोण और कर्ण के अस्त्रविद्या में गुरु कहे गए हैं यद्यपि महाभारत के अनुसार ही गुरु त्रेता के अंत में हुए और उनके शिष्य द्वापर के अंत में।

महाभारत में कितने ही भार्गव-उपाख्यान सन्निविष्ट पाए जाते हैं; जैसे आदिपर्व में औवोंपाख्यान, आरण्यक-पर्व में कार्तवीर्योपाख्यान, उद्योगपर्व में अंबोपाख्यान, शांतिपर्व में विपुलोपाख्यान और अश्वमेधपर्व में उत्तंकोपाख्यान आदि। सारा पौलोमपर्व और पौष्यपर्व का अधिकांश भाग—महाभारत के दो स्वतंत्र उपपर्व—भार्गव-उपाख्यानों से भरे हुए हैं। इसके अतिरिक्त भार्गवों के कई लंबे संवाद हैं। जैसे भृगु-भारद्वाज-संवाद, च्यवन-कुशिक-संवाद और मार्कंडेय-समास्या।

इन भार्गव-उपाख्यानों की एक विशेषता महाभारत में उनकी कई बार आवृत्ति है। उत्तंक की कथा, च्यवन-इंद्र-संघर्ष-कथा, भार्गव राम से द्रोण की अस्त्र-प्राप्ति-कथा और कर्ण के शिष्यत्व की कथा दो दो बार है। जमदग्नि और राम की जन्म कथा चार बार है। भार्गव राम के द्वारा क्षत्रियों के २१ बार नाश का उल्लेख १० बार हुआ है और हर दफे 'त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा' यही उसका रूप है, जिसे सूतों ने उनके विरुद-गान का अंतरा ही बना लिया था। भार्गव राम के द्वारा क्षत्रियों के गर्व तोड़ने का उल्लेख तो लगभग २० बार हुआ है।

यह बात ध्यान देने की है कि भार्गवों को यह गौरव एकदम महाभारत में ही मिलता है। उनके यश और वीर्य का कोई आभास वैदिक-साहित्य में ढूँढ़े नहीं मिलता[1]।

---

१ देखिए मैकडानल और कीथ का वैदिक इंडेक्स भाग २ पृ० १०६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस साहित्य में भार्गवों को प्राय: अग्नि-पूजन की प्रथा का भक्त कहा गया है और वे अग्निपूजक पुरोहितों के रूप में वर्णित हैं। उन्होंने मनुष्यों के लिये अग्नि को प्राप्त किया। प्रख्यात दश राजाओं के युद्ध में द्रुह्यु लोगों के साथ भार्गवों का वर्णन है। कई मंत्रों में उनको अंगिरसों का सहयोगी बताया गया है। अथर्व वेद भृगु-अंगिरा-वेद कहलाता है और यह सत्य मालूम होता है कि भृगु और अंगिरा दोनों ही मंत्र-तंत्र की आथर्वणी प्रक्रिया में दक्ष थे। क्षत्रियों से उनकी टक्कर होने का कुछ आभास इस साहित्य में है।

यह प्रत्यक्ष है कि वैदिक प्रमाणों के सहारे प्राचीन भार्गवों का वह गौरव सिद्ध नहीं होता जो महाभारत में उनको मिला है, तथापि वैदिक प्रमाणों में कहीं कहीं बाद के भार्गव-उपाख्यानों की हलकी झलक दिखाई पड़ती है। च्यवन और अश्विनीकुमारों की कथा का मूल ऋग्वेद के एक मंत्र में है जिसमें अश्विनीकुमारों ने च्यवन को पुनर्यौवन प्रदान करके अपनी पत्नी के लिये प्रिय भावुक और कन्याओं का पति होने योग्य बना दिया। ब्राह्मणों ने इस मूल-कथा को विस्तृत किया। भृगुओं और अंगिरसों का घनिष्ठ सान्निध्य महाभारत की कथाओं तथा वंशावलियों में प्रतिबिंबित होता है।

महाभारत के समस्त भार्गव-उल्लेखों का एकत्र विचार करने से यह परिणाम अनिवार्य हो जाता है कि भरतवंश के युद्ध की कहानी में भार्गवों के वर्णन को बहुत अधिक स्थान दिया गया है। भारत-युद्ध के चित्रपट का पृष्ठदेश प्राय: भार्गव-उपाख्यानों से ही भरा हुआ है। अधिक बारीकी से जाँच करने पर संभवत: और भी भार्गव-सामग्री अभी मिल सकती है। यह भी सत्य है कि भार्गवों के व्यक्तित्व को बहुत बढ़ा चढ़ाकर दिखलाया गया है। उनके रूप मोटी कूँची से गहरे रंगों में खींचे गए हैं। उनके उपाख्यान समग्र ग्रंथ में बँटे हुए हैं (केवल १०वाँ पर्व और १५ से १८ पर्व को छोड़कर) जो केवल २५०० श्लोकों के बराबर हैं और संपूर्ण ग्रंथ का तुलना में नगण्य हैं। यह बात क्यों हुई ?—यह एक समस्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समझना बड़ा भोलापन होगा कि इस विविध भार्गव-सामग्री का सन्निवेश अनजान में ही बिना किसी उद्देश्य के हो गया है और वह भारत की स्वाभाविक शैली का अंग है। पहले तो इस बात का निश्चित प्रमाण है कि महाभारत का आकार जान-बूझकर बढ़ाया गया है। कम से कम पौलोम-पर्व के उदाहरण में यह निर्विवाद है कि वह कुरु-पांडव-कथा के बाद की मिलावट है। उसमें केवल भार्गव-उपाख्यान हैं और भारत की कथा से उसका रत्ती भर भी संबंध नहीं है। दूसरी बात यह है कि महाभारत में इस बात का भी प्रमाण है कि उसी ग्रंथ की पुरानी कथाओं को "भार्गव" रंग से पोतकर सजाया गया है। इसके दो प्रकार हैं। जिन कथाओं में भार्गव अंश बिलकुल न था उनमें थोड़े से भार्गव अंश की मिलावट कर देना, जैसे षोडशराजकीय प्रकरण में सगर की कथा निकालकर राम जामदग्न्य की कथा मिला दी गई। दूसरा रूप यह है कि जो कथाएँ पहले से ही कुछ कुछ भार्गवों से संबंधित थीं उन पर और गहरा रंग चढ़ा दिया गया, जैसे नहुष-अगस्त्य की कथा में। हमने यह बात भी देखी कि महाभारत की कथा का प्रारंभ दो स्थलों में है जिनमें से एक भार्गव-प्रभाव से मुक्त है। सौभाग्य से एक ऐसी साहित्यिक घटना से, जो महाभारत की ही विशेषता है, ये दोनों स्थल परस्पर-विरोधी होते हुए भी पास पास रखकर सुरक्षित कर लिए गए। महाभारत के प्रचार से भी एक भार्गव का संबंध उत्तंक की कथा द्वारा सुझाया गया है जिसने जनमेजय को नागयज्ञ करने के लिये प्रेरित किया जहाँ महाभारत का सार्वजनिक पारायण हुआ। प्रमति से रुरु ने जो कथा कही वही हमारा आस्तीकपर्व है। अंत में सौ बातों की एक बात यह है कि कुलपति शौनक, जिनको उग्रश्रवा सूत ने महाभारत की कथा सुनाई, स्वयं भार्गव थे। इसलिये शौनक की इस प्रार्थना में कि वे सबसे पहले भार्गव-वंश की कथा सुनना चाहते हैं—(१।५।३) तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।—जो भार्गव-पक्षपात निहित है, उसका कारण भी हमारी समझ में आ जाता है। परंतु पूर्व पक्ष से यह कहा जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है कि हम अपनी ओर से भार्गव-सामग्री पर इतना गौरव दे रहे हैं। महाभारत संपूर्ण ब्राह्मण-परंपरा का एक विश्वकोष था या हो गया है और इसलिये भार्गवों की कथाएँ भी इसमें हैं—संभव है कुछ अतिरंजना के साथ हों। स्वयं महाभारत में कहा है—(१।५६।३३)

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।

कुछ हद तक यह कथन ठीक है। जिन संग्रहकर्त्ताओं ने भरतवंश की सीधी सादी युद्धकथा को ब्राह्मण धर्म के विश्वकोष के रूप में ढालने का भगीरथ आयोजन किया, संभव है कि अपने चुनाव में न्याय से काम लेने पर भी और धर्म तथा अध्यात्म संबंधी विषयों में उदार मति रखने पर भी उनकी अभिरुचि और पक्षपात किसी विशेष दिशा में रहा हो, जिसके कारण उन्होंने अगस्त्य, आत्रेय, कण्व, कश्यप, गौतम, वशिष्ठ आदि ब्राह्मण कुलों के वर्णन के लिये उतना स्थान नहीं दिया और न उतनी उदारता से काम लिया जितना भृगुवंश के लिये। इन वंशों की कथाओं का नितांत अभाव न होने पर भी वे संख्या में अपेक्षाकृत बहुत कम हैं और उनकी पुनरावृत्ति कभी नहीं हुई। महाभारत के कथाप्रवाह में वे छिप-सी गई हैं, परंतु भार्गवों के उपाख्यान ऊँचा सिर उठाए हुए बार बार हमारे सामने आकर दर्शन देते हैं और भार्गव महापुरुषों के जो देवतुल्य आकार कल्पित किए गए हैं वे भीष्म, कर्ण, कृष्ण और अर्जुन जैसे अतिमानवी स्वरूपों के साथ टक्कर लेते और उनको भी पीछे छोड़ जाते हैं।

तुलना के लिये यदि हम रामायण को देखें तो उसमें भार्गव-सामग्री कितनी कम है! भृगु के बारे में सिर्फ इतना उल्लेख है कि उनकी पत्नी का विष्णु के द्वारा शिरश्छेद हुआ। वाल्मीकि के ग्रंथ में केवल कुछ कहानियों के वक्ता-रूप में च्यवन का नाम आया है। राम जामदग्न्य का उल्लेख सिर्फ एक बार दाशरथि राम के साथ होनेवाले संघर्ष में है जिसमें उनको नीचा देखना पड़ा। रामायण के जमदग्नि इसके अतिरिक्त कि वे कार्त्तवीर्य अर्जुन के हाथों मारे गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल अज्ञात व्यक्ति हैं। तेजस्वी और्व का कहीं नाम भी नहीं है। इस स्थिति पर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है।

यह निर्विवाद है कि वर्त्तमान महाभारत की भार्गव-सामग्री का भरतवंश की पुरातन कथा के संग्रथन से कुछ संबंध नहीं है। भार्गव-सामग्री महाभारत के उस अंश में है जिसका निर्माण उपाख्यानों से हुआ है इसलिये हमारी सम्मति में बिना हिचकिचाहट के यह परिणाम निकाला जा सकता है कि **महाभारत के वर्त्तमान संस्करण में भारत कथाओं का भार्गव-उपाख्यानों के साथ संबंध जान-बूझकर ताने-बाने की तरह मिलाया गया या गठबंधन की तरह जोड़ा गया है।**

यह प्रश्न बड़ा आकर्षक है कि यह भार्गव-सामग्री, जो अधिकांश में महाभारत के उपाख्यानात्मक अंश में सन्निविष्ट है, किस प्रकार भरत-वंश के कथाचक्र का अंग बना ली गई। इसका उत्तर दुर्भाग्य से अब कल्पना पर निर्भर है। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार भी महाभारत के प्रसिद्ध रचयिता भगवान् वेदव्यास का यह कार्य नहीं है; क्योंकि ग्रंथ के संस्कर्त्ताओं ने सौभाग्य से इस बात को साफ स्वीकार किया है कि व्यास का मूल ग्रंथ भारत २४००० श्लोकों का था और उसमें उपाख्यान नहीं थे (१।१।६१)—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

अर्थात् व्यास ने २४००० श्लोकोंवाली भारतसंहिता बनाई। बिना उपाख्यानों के ग्रंथ को अभिज्ञ लोग भारत कहते हैं। व्यास के शिष्य वैशंपायन का भी यह कार्य नहीं मालूम होता जिन्होंने व्यासकृत भारत को, स्वयं व्यास की उपस्थिति में, अपने गुरु से जैसा पढ़ा था वैसा ही जनमेजय के नागयज्ञ में सुनाया था।

इसके बाद महाभारत के जिस संस्करण का प्रमाण मिलता है, अर्थात् भार्गव शौनक के द्वादशवर्षीय यज्ञ में सूत उग्रश्रवा ने जिस ग्रंथ का पारायण किया था, उसके विषय में परिस्थिति पहले से भिन्न थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा आरंभ होने से पहले ही शौनकजी सूतजी से, जो महाभारत की कथा सुनाने आए थे, भार्गव-वंश की कथा सुनाने का आग्रह करते हैं और सूतजी तदनुसार कार्य करते हैं। अब घटनास्थल अशांत कौरव-राजसभा से उठकर भार्गवों के प्रशांत आश्रम में स्थापित होता है।

हमारे विचार में कम विद्वान् अब ऐसे मिलेंगे जो इस बात को न मानते हों कि अन्य देशों के प्राचीन वीरगाथा-काव्यों के समान भारत भी परिस्थिति और जनरुचि के अनुसार परिवर्त्तित होता रहा है। इसका स्वरूप तरल बना रहा, पथराया नहीं। इस बात के स्वीकार कर लेने से ग्रंथ की अवहेलना या उस पर कोई आक्षेप इष्ट नहीं है, बल्कि इस प्रकार के संवर्धन और संस्करण की प्रक्रिया स्वाभाविक, अनिवार्य और व्यापक दृष्टि से सर्वांश में न्याय्य है। लोक के प्रगतिशील जीवन में वास्तविक प्रभाव डालने के लिये महाभारत-सदृश ग्रंथों को परिवर्त्तनशील होना ही चाहिए। इस परिवर्द्धन और परिष्कार की प्रक्रिया इस बात का प्रमाण है कि लोक का जीवन इस ग्रंथ से अनुप्राणित और प्रभावित होता रहा, अर्थात् महाभारत ऐसा ग्रंथ न था जिसे लोग विस्मृत करके धूलिधूसरित होने के लिये छोड़ देते। महाभारत के लिये इस परिस्थिति से कोई क्षति नहीं पहुँची। उसका वास्तविक महत्त्व और मूल्य यही है कि उसमें अनेक युगों की भारतीय संस्कृति के दर्शन चलते चित्रपट के समान प्राप्त होना शक्य हैं। उसमें इतिहास की जड़ीभूत घटनाएँ चाहे न सही परंतु साँची के बौद्ध स्तूपों के द्वार-तोरण और स्तंभों पर उत्कीर्ण शिल्प के समान अथवा अजंता के प्रख्यात भित्तिचित्रों के समान उसमें भारतीय जीवन के अनेक दृश्य स्थायी रूप में खचित हो गए हैं। जैसा कहा जा चुका है, यह संभव जान पड़ता है कि आरंभिक काल में पुष्कल भार्गव-प्रभाव महाभारत के स्वरूप-निर्माण में कार्य कर रहा था। मूल ग्रंथकर्त्ता व्यास और संभवतः वैशंपायन के भी बाद इस सामग्री ने मौलिक ग्रंथ पर अपना प्रभाव जमाना आरंभ किया। महाभारत के तीसरे पारायण का श्रेय सूतजी को है। तो क्या भारत को महा-भारत में बदल डालने का उत्तरदायित्व सूतजी पर ही है? इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को किसी तरह से नहीं माना जा सकता कि धर्म और नीति से संबंध रखनेवाले प्रगाढ़ संवाद और बृहत् उपाख्यानों को, जिनके द्वारा २४००० श्लोकों का ग्रंथ वर्तमान विश्वकोषात्मक स्वरूप को प्राप्त हो गया, केवल कथावाचक सूतों ने ही रच डाला हो।

महाभारत उस प्रकार का इतिहास ग्रंथ कदापि नहीं जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं के तिथिक्रम और आँकड़ों को इकट्ठा करके ठेठ इतिहास लिखा गया हो। इस प्रकार का नीरस ग्रंथ किसी प्रकार भी २५०० वर्ष तक जीवित नहीं रह सकता था। कौन नहीं जानता कि इतिहास के पंडितों द्वारा बड़े परिश्रम से रचे गए सैकड़ों पोथे लोक-जीवन में अपना प्रभाव खोकर पुस्तकालयों में धूल चाटते हैं। कौन व्यक्ति उन्हें दुबारा पढ़ने का कष्ट करता होगा? महाभारत उस प्रकार की वैज्ञानिक पद्धति से रचा हुआ इतिहास न कभी था और न उसे ऐसा समझना ही चाहिए। वह एक भावात्मक काव्य है। पहले लोगों ने भी उसे वस्तुतः **काव्य** कहा है—

कृतं मयेदं भगवान् काव्यं परमपूजितम्।

रामायण के समान यह भी बहुत उच्च कोटि का काव्य है। यह एक कलाकार की सृष्टि है जिसमें आदर्शों की उपासना की गई है, तथा जिसमें नीति और धर्म के गम्भीर भाव ओतप्रोत हैं। इस काव्य में धर्म और सत्य के तत्त्वों को स्वच्छंदता के साथ उपाख्यानों की सहायता से समझाया गया है। उसमें प्रत्येक शब्द के अक्षरार्थ पर आग्रह करना अयुक्त है।

महाभारत को सूत ने वैशंपायन के पारायण में सुनकर कंठ कर लिया था और शौनक की प्रार्थना पर **शब्दशः** उसकी आवृत्ति की थी—यह कथन ग्रंथ के जन्म की एक साहित्यिक रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। भारतीय साहित्य में और ग्रंथों के लिये भी इसी प्रकार की उत्थानिका मिलती है। हमारे विचार में महाभारत की उत्थानिका में अनजाने ही यह बात अंगीकार कर ली गई है कि किसी गाढ़े समय में भारत ग्रंथ सूतों के द्वारा भृगुओं के प्रभावक्षेत्र में आ गया। कुलपति शौनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भार्गव-प्रभाव के प्रतीक हैं। वीरगाथाओं के युग में जो सूत इस काव्य का गान करते थे, उनका संबंध कुलपति शौनक के साथ भी परंपरा के अनुसार सुरक्षित रक्खा गया है।

महाभारत के कथाभाग में तो भार्गवों का प्रभाव निर्विवाद सिद्ध है। एक दूसरे क्षेत्र में भी उनके प्रभाव की संभावना विदित होती है जिसका सिद्ध करना अपेक्षाकृत कठिन है। हमारा तात्पर्य्य धर्म और नीति से संबंध रखनेवाली उस विशाल सामग्री से है जिसका संग्रह विशेषत: शांति और अनुशासन पर्वों में पाया जाता है। यह सर्वसम्मत है कि धर्म और नीति का सर्वांगपूर्ण और गंभीर विवेचन महाभारत में प्राप्त है जिसके कारण हिंदू संस्कृति में इसे स्मृति का पद दिया गया और भारतवासियों की दृष्टि में इसको शाश्वत सम्मान और मूल्य प्राप्त हुआ।

संयोग से धर्म और नीति इन्हीं दो विषयों में भृगुओं ने **विशेष अधिकार** प्राप्त किया था। विशेष रूप से भृगुओं के नाम इनके साथ संबद्ध हैं। भार्गव शुक्र का नीति विषय के साथ संबंध, जो महाभारत में भी रूढ़ है, विश्वविदित है। धर्मशास्त्र के साथ भृगुओं का संबंध भी निश्चित रूप से था पंतु वह इतना सुविदित नहीं है। मनुस्मृति के आंतरिक प्रमाण से ही यह सिद्ध है कि मनु द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र के सुनाने का कार्य (श्रावण) भृगु ने ही किया जिसके कारण मनुस्मृति को आज भी भृगुसंहिता कहा जाता है और जिस पर संदेह करने का रत्ती भर भी कारण नहीं है। विद्वानों को यह भी विदित है कि महाभारत और मनुस्मृति में घनिष्ठ संबंध है। मनुस्मृति का आरंभिक भाग महाभारत के प्रथम अध्याय के ढंग का है। कुछ श्लोकों के तो शब्द भी एक से हैं। कितनी जगह महाभारत में प्रमाण रूप से मनु की सम्मति उद्धृत की गई है (इत्येवं मनुरब्रवीत्)। डा० बूलर की गणना के अनुसार मनुस्मृति के २६० श्लोक (समग्र ग्रंथ का लगभग दशमांश) ज्यों के ज्यों (या बहुत कम पाठांतर के साथ) महाभारत के पर्व ३, १२ और १३ में पाए जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पूरे महाभारत की छानबीन करने पर संभव है कि और श्लोक भी एक से मिलें। महाभारत का विशाल प्रासाद धर्म की नींव पर रचा गया है। महाभारत धर्मग्रंथ है। उसके नायक धर्म के पुत्र धर्मराज हैं। भारत युद्ध धर्मयुद्ध था—यतो धर्मस्ततो जयः। युद्धभूमि को धर्मक्षेत्र कहा गया। स्वयं नारायण ने धर्म की ग्लानि को हटाकर धर्म की स्थापना के लिये श्रीकृष्ण रूप में अवतार लिया। महाभारत का सारांश, जिसका नाम भारत-सावित्री है, संपूर्ण कथानक के आदर्श को व्यक्त करने के लिये ग्रंथांत में इस प्रकार दिया गया है (१८।५।६२ प्रभृति)—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

भार्गव कथा और उपाख्यानों के रूप में विपुल भार्गव-सामग्री का सन्निवेश, उसके वर्णन की शैली, और धर्म और नीति संबंधी भागों का सम्मिश्रण—जिसने विशेषतः भारतचिंतकों को उलझन में डाल रक्खा था—इन तीनों बातों की सरल और सीधी उपपत्ति यह मान लेने से समझ में आ जाती है कि **महाभारत का महत्त्वपूर्ण एक संस्करण भार्गवों के प्रबल और साक्षात् प्रभाव के अंतर्गत तैयार किया गया**[1]। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इस पाठ-स्थापना के बाद ग्रंथ के रूप में कुछ फेरफार नहीं हुआ। इस देश के अन्य परंपरागत ग्रंथों की तरह विगत २५०० वर्षों के लंबे समय में महाभारत के कलेवर में भी शनैः शनै परिवर्द्धन परिवर्त्तन चलता ही रहा।

---

१ *The assumption of an important unitary diaskeuasis of the epic under very strong and direct Bhārgava influence.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह परिवर्द्धन भी ग्रंथ का प्रथम पाठ निश्चित हो जाने के बाद की शताब्दियों में संभवतः भार्गवों के द्वारा ही किए गए। वैदिक शाखाएँ और ब्राह्मण जिस प्रकार विशेष विशेष वैदिक चरणों में और ऋषिकुलों में सुरक्षित रहे उसी प्रकार पंचम वेद भारत भी अवश्य ही कुछ काल पर्यंत भार्गवों की साहित्यिक संपत्ति बना रहा। विविध सामग्री रखते हुए भी महाभारत में जो एकसूत्रता पाई जाती है उसका कारण हमारी सम्मति में यही था। इस सामग्री के निर्माण में संभव है कि कितने ही कारीगरों ने भाग लिया हो पर उसे एक ही साँचे में से होकर निकलना पड़ा।

यदि उपरोक्त विचारों की युक्ति अखंड है तो उनकी सहायता से हम महाभारत को आच्छन्न करनेवाले परदे को उठाकर उसके पूर्व इतिहास की कुछ झाँकी ले सकते हैं। इस प्रकार की झाँकी से यह मालूम होता है कि भारतवर्ष के अत्यंत प्राचीन युग में २४००० श्लोकों का एक वीर-गाथा-परक काव्य था जिसके कर्त्ता व्यासजी माने जाते थे एवं जिसमें विस्तार से भारत-युद्ध और पांडवों के माहात्म्य का वर्णन था। इस वीर काव्य को अर्थात् राजसभाओं में सूतों द्वारा गाए जानेवाले भारत को, जो अत्यंत लोकप्रिय हो गया था, किसी संकट-परिस्थिति में भृगुओं ने (जिनको धर्म और नीतिशास्त्र विशेष अधिकृत थे और संभवतः वैष्णव सिद्धांतों में भी अभिरुचि थी) अपना लिया और लोक की शिक्षा और अभिरुचि के उद्देश्य से उस काव्य का बृहत् संस्कार कर डाला। पुरातन ज्ञान-गरिमा के अधिकारी और उपाख्यान-शैली में प्रवीण इन मुनियों ने सूतों से भारत को लेकर पीछे महाभारत के रूप में उसे संसार को वापिस किया। भृगुओं के द्वारा होनेवाले इस संस्कार में स्वभावतः ही उस ग्रंथ पर (भृगु-संस्कृति) अर्थात् उनके उदीर्ण इतिहास, प्रवृत्ति और दृष्टिकोण की गहरी छाप पड़ी। इसका फल यह हुआ कि महाभारत काव्य ने एक साथ ही युद्ध-ग्रंथ और धर्म-ग्रंथ दोनों का रूप धारण कर लिया। यह कल्पना की जा सकती है कि भारत का यह परिष्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप दीर्घकाल तक भार्गवों की सुरक्षा में बना रहा और उन्होंने अपने ढंग से उसको प्रचारित किया। इस नए भार्गव-संस्करण को इतनी विराट् सफलता प्राप्त हुई जो उचित ही थी कि मूलग्रंथ, जिसका नाम भारत था, भूल में पड़ गया और आगे चलकर बिलकुल लुप्त हो गया। आश्वलायन गृह्यसूत्र के समय तक मूल भारत काव्य महाभारत से अलग ही विद्यमान था; क्योंकि उसमें दोनों का साथ साथ उल्लेख मिलता है। भृगुओं के हाथ से निकलकर जिस काल में भी महाभारत ग्रन्थ समस्त देश की साहित्यिक संपत्ति बन गया उस काल के बाद भी इसमें थोड़े बहुत परिवर्त्तन-परिवर्द्धन का द्वार खुला ही रहा, किंतु लोक में यह महर्षि व्यास द्वारा विरचित प्राचीन ग्रंथ की भाँति ही पूजित होता रहा। भारतों के इस वीर काव्य पर पड़े हुए भार्गव-प्रभाव की जितनी ही गहरी छानबीन आगे की जायगी, हमारी सम्मति में भारतवर्ष के इस विराट् काव्य महाभारत का इतिहास उतना ही सुस्पष्ट होता जायगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीसलदेव रासो का निर्माणकाल

[लेखक--महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्०]

नरपति नाल्ह रचित 'वीसलदेव रासो' के निर्माणकाल के संबंध में भिन्न भिन्न विद्वानों के मत भिन्न भिन्न हैं और हस्तलिखित प्रतियों में कहीं उसका वि० सं० १०७३, कहीं १०७७, कहीं १२७२, कहीं १३७७ और कहीं १७७३ में निर्माण होना लिखा मिलता है। श्रीयुत् अगरचंद नाहटा ने 'राजस्थानी' (त्रैमासिक पत्रिका, भाग ३, अंक ३) में अपने 'वीसलदे रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ' नामक लेख में भिन्न भिन्न पंद्रह प्रतियों के आधार पर उसकी रचना के ऊपर दिए हुए भिन्न भिन्न संवत् दिए हैं। और उसकी भाषा सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा बतलाई है तथा सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाम के एक जैन कवि के होने का भी संकेत किया है। तिस पर भी उक्त पुस्तक का रचना-काल अनिश्चित ही रहता है, जिसका निश्चय करना आवश्यक है।

छपे हुए 'वीसलदेव रासो' में, जो काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है, उसका रचना-काल—

बारह सै बहत्तराँ[1] हाँ मँझारि।
जेठ बदी नवमी बुध वारि[2] ॥

१---उक्त पुस्तक के संपादक ने "बारह सै बहत्तराँ" का अर्थ १२१२ किया है (वीसलदेव रासो की भूमिका; पृ० ८) और कुछ विद्वान् ऐसा ही मानते भी हैं। परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि राजस्थानी भाषा में "बहत्तराँ" का अर्थ १२ नहीं, ७२ होता है।

२—वीसलदेव रासो (नागरीप्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित), पृ० ४, छंद ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ बदि ९ बुधवार दिया है। राजपूताने में पहले विक्रम संवत् कहीं चैत्रादि (चैत्र सुदि १ से प्रारंभ होनेवाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक सुदि १ से प्रारंभ होनेवाला) चलता था, जैसा कि वहाँ से मिलनेवाले शिलालेखों, दानपत्रों और पुस्तकों से पाया जाता है[1]। चैत्रादि वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ बदि ९ को शुक्रवार था और कार्तिकादि वि० संवत् के अनुसार अर्थात् चैत्रादि १२७३ में उक्त तिथि को बुधवार आता है। यह प्रति जयपुर से प्राप्त वि० सं० १६६९ की लिखी हुई प्रति के आधार पर संपादित हुई है। नाहटाजी की वि० सं० १७२४ की लिखी हुई प्रति नं० १ में भी यही संवत् दिया है[2], इसलिये उस पर अलग विचार करने की आवश्यकता नहीं।

उनकी प्रति संख्या २ में

संवत सहस सत्तिहतरइ जाणि......
सुकल पख पंचम श्रावण मास
रोहिणी नचत्र[3]...............

अर्थात् वि० सं० १०७७ श्रावण सुदि ५ रोहिणी नक्षत्र दिया है। इसमें वार नहीं है। चैत्रादि संवत् के अनुसार वि० सं० १०७७ श्रावण सुदि ५ को बुधवार और हस्त नक्षत्र था और कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को सोमवार और हस्त नक्षत्र आता है। यह संवत् भी नक्षत्र की विभिन्नता के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता। प्रति नंबर ८, ११ और १२ में केवल "संवत् सहस तिहुतरइ" अर्थात् वि०

१—राजपूताना के राज्यों में कहीं आषाढ़ सुदि १, कहीं श्रावण बदि १ और कहीं भाद्रपद सुदि २ से वर्षारंभ मानते हैं, परंतु ये राजकीय हिसाब के लिये हैं। जनसाधारण में पंचांग के अनुसार, ब्राह्मणादि में चैत्रादि और व्यापारी वर्ग में बहुधा कार्तिकादि संवत् का ही प्रचार अधिकता से पाया जाता है।

२—राजस्थानी (त्रैमासिक पत्रिका); भाग ३, अंक ३, पृ० २०।

३—वही; भाग ३, अंक ३, पृ० २०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १०७३ ही दिया है,[१] मास, पक्ष, तिथि, वार आदि कुछ नहीं है; इसलिये उनके संबंध में जाँच नहीं हो सकती। प्रति नंबर १० में "संवत सतर तिहोतरे" अर्थात् वि० सं० १७७३ दिया है,[२] जिस पर विचार करना निरर्थक है; क्योंकि जयपुर की वि० सं० १६७९ फाल्गुन बदि १ की लिखी हुई प्रति मिल गई है।

प्रति नंबर १३ में—

संवत तेर सतोतरइ जांणि..........
सुक्ल पंचमी नइ श्रावणमास
हस्त नक्षत्र रविवार सुं
सुभ दिन जोसी रे जोड़ियउ रास[३]

अर्थात् वि० सं० १३७७ श्रावण सुदि ५ हस्त नक्षत्र रविवार दिया है। चैत्रादि संवत् के अनुसार वि० सं० १३७७ श्रावण सुदि ५ को हस्त नक्षत्र और शुक्रवार था तथा कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को चित्रा नक्षत्र और गुरुवार आता है। इस तरह यह संवत् भी अशुद्ध ठहरता है।

इन सब संवतों में कार्तिकादि संवत् मानकर वार आदि का मिलान करने से छपी हुई पुस्तक और नाहटाजी की प्रति नं० १ के संवत्, मास, पक्ष, तिथि और वार आदि ठीक मिल जाते हैं, शेष के नहीं। ऐसी दशा में अब तक मिली हुई उक्त पुस्तक की हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर कार्तिकादि वि० सं० १२७२ (चैत्रादि १२७३) ही उसका रचनाकाल मानना पड़ता है।

अब हम ग्रंथ की भीतरी बातों पर विचार करेंगे। अजमेर और साँभर के चौहानों में विग्रहराज नाम के, जिनको वीसलदेव भी

१—राजस्थानी (त्रैमासिक पत्रिका); भाग ३, अंक ३, पृष्ठ २०।

२—वही; भाग ३, अंक ३, पृष्ठ २०।

३—वही; भाग ३, अंक ३, पृष्ठ २०-२१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते थे,[१] चार राजा हुए। प्रत्येक राजा का औसत राज्य-समय पंद्रह वर्ष[२] मानने से विग्रहराज प्रथम, विग्रहराज द्वितीय से दस पीढ़ी पूर्व अर्थात् वि० सं० ८८० के लगभग हुआ होगा। वीसलदेव द्वितीय (विग्रहराज) वि० सं० १०३० में विद्यमान था, जिसने गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज पर चढ़ाई की थी। विग्रहराज तृतीय का, जो विग्रहराज द्वितीय से आठवीं पीढ़ी में हुआ, समय वि० सं० ११५० के लगभग होना चाहिए। वह परमार राजा भोज के भाई उदयादित्य का समकालीन था, जो वि० सं० १११६[३] के आसपास गद्दी पर बैठा था और जिसके समय के वि० सं० ११३७[४] और ११४३[५] के शिला-लेख मिल गए हैं। विग्रहराज तृतीय की सहायता पाकर उदयादित्य ने गुर्जर देश के सोलंकी राजा कर्ण को जीता था। कर्ण के दानपत्र

१—आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेदनाभि-
र्द्देवः शाकंभरींद्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः ॥ १ ॥
ब्रूते संप्रति चाहमानतिलकः शाकंभरीभूपतिः
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी संतानजानात्मनः ॥ २ ॥

—दिल्ली के फीरोजशाह की लाट पर चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के वि० सं० १२२० वैशाख सुदि १५ गुरुवार के लेख से।

२—विग्रहराज द्वितीय वि० सं० १०३० और विग्रहराज चतुर्थ वि० सं० १२१० में विद्यमान थे। इन दोनों के बीच १८० वर्षों में बारह पीढ़ियाँ हुईं। हिसाब करने से प्रत्येक राजा का औसत राज्य-काल पंद्रह वर्ष आता है, जो हमने ऊपर माना है।

३—बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० ६, पृ० ५४६।

४—इंडियन एंटिक्वेरी; जि० २०, पृ० ८३।

५—यह लेख झालरापाटन म्यूजियम में सुरक्षित है। बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० १०, पृ० २४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० सं० ११३१[१] और ११४८[२] के मिले हैं। विग्रहराज चतुर्थ ने वि० सं० १२१० में 'हरकेलि नाटक' समाप्त किया था और वि० सं० १२२० तक के उसके कई शिलालेख मिल गए हैं।

'वीसलदेव रासो' में वीसलदेव के पूर्वजों की कोई वंशावली नहीं दी है, जिससे यह निर्णय नहीं होता कि वह उक्त चारों वीसलदेवों में से किससे संबंध रखता है। 'वीसलदेव रासो' में कवि ने मुख्यतया दो घटनाओं का वर्णन किया है—एक तो वीसलदेव के राजा भोज की पुत्री से विवाह होने की और दूसरी उस (वीसलदेव) के उड़ीसा जाने की। जहाँ तक पहली घटना का संबंध है, बीज रूप में उसमें सत्य का अंश अवश्य है, परंतु शेष कथा कल्पित ही प्रतीत होती है, जैसा हम आगे चलकर बतलाएँगे।

'वीसलदेव रासो' में लिखा है कि वीसलदेव की रानी राजमती परमार राजा भोज की पुत्री थी। परमार राजा भोज उदयादित्य का बड़ा भाई था और उस (भोज) ने चौहान राजा वाक्पतिराज (द्वितीय) के छोटे भाई वीर्यराम को युद्ध में मारा था, जिससे संभव है मालवा के परमारों और साँभर के चौहानों में अनबन हो गई हो। राजपूतों में ऐसी अनबन पुत्री विवाहने से मिटती थी, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास में मिलते हैं। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के बीजोल्याँ के शिलालेख में दी हुई चौहानों की वंशावली में विग्रहराज (तृतीय) की रानी का नाम राजदेवी दिया है[३]। 'वीसलदेव रासो' की

१—जर्नल आव् दि बांबे ब्रांच आव् रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० २६, पृ० २५७।

२—एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १, पृ० ३१७-१८।

३—चामुंडोऽवनिपेति राणकवरः श्रीसिंघटो दूसल-
स्तद्भ्राताथ ततोपि वीसलनृपः श्रीराजदेविप्रियः''॥ १४ ॥
—बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० ५५, भाग १ (सन् १८८६), पृ० ४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमती और यह राजदेवी नाम एक ही रानी के सूचक होने चाहिएँ। परमार राजा भोज के अंतिम समय उसके राज्य पर बड़ी आपत्ति आई और गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (प्रथम) तथा चेदि के राजा कर्ण ने उस पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई के समय ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके पीछे उसका पुत्र जयसिंह परमार राज्य का स्वामी हुआ, जिसके समय का वि० सं० १११२[1] का एक दानपत्र और १११६[2] का एक शिलालेख पाणाहेड़ा (बाँसवाडा राज्य) से मिला है। उसका उत्तराधिकारी उसका चाचा उदयादित्य हुआ, जिसने अपने राज्य की स्थिति दृढ़ की। संभव है उसने चौहानों के साथ का अपना वैर मिटाने के लिये अपनी भतीजी (भोज की पुत्री) राजदेवी अथवा राजमती का विवाह वीसलदेव तृतीय से किया हो, जिससे पीछे से गुजरातवालों के साथ की लड़ाई में उसे उस (वीसलदेव तृतीय) की सहायता प्राप्त हुई हो। इससे तो यही अनुमान दृढ़ होता है कि 'वीसलदेव रासो' का नायक चौहान राजा वीसलदेव तृतीय है, न कि चतुर्थ, जैसा प्रकाशित पुस्तक के संपादक ने मान लिया है एवं कुछ अन्य विद्वान् भी मानते हैं।

'वीसलदेव रासो' का रचनाकाल वि० सं० १२१२ मानकर उसके नायक को वीसलदेव चतुर्थ और उसके रचयिता नरपति नाल्ह को उसका समकालीन कवि मानना भ्रमपूर्ण कल्पना ही प्रतीत होती है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। 'वीसलदेव रासो' का रचना-काल कार्तिकादि वि० सं० १२७२ (चैत्रादि १२७३) होना चाहिए, न कि १२१२ और उसका नायक वीसलदेव तृतीय, न कि वीसलदेव चतुर्थ। नरपति को भोज की पुत्री से वीसलदेव का विवाह होने की बात ज्ञात थी। उसी के आधार पर उसने उक्त घटना से लगभग १५० से भी अधिक वर्षों बाद अपने काव्य की रचना की। यह विवाह कब हुआ, इसका

१—एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ३, पृ० ४८।

२—राजपूताना म्यूजियम अजमेर की रिपोर्ट; ई० स० १६१६-१७, पृ० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ठीक पता उसे न था, पर वधू के भोज की पुत्री होने से उसने उसके समय में ही विवाह होना लिख दिया। अपने काव्य को लोक-प्रिय और रोचक बनाने तथा नायक की महत्त्व-वृद्धि के निमित्त काव्य में वर्णित अन्य घटनाओं में उसने कल्पना का आश्रय लिया। विवाह के समय भोज का आलीसर, कुडाल, मंडोवर, सौराष्ट्र, गुजरात, साँभर, टोड़ा, टोंक, चित्तौड़ आदि देश वीसलदेव को देना कोरी कवि-कल्पना ही है। जैसलमेर, अजमेर, आनासागर आदि उक्त काव्य की रचना के समय अर्थात् चैत्रादि वि० सं० १२७३ में विद्यमान थे। कवि ने उनके नाम भी उसमें समाविष्ट कर दिए। अनेक नामों की भरमार के ऐसे उदाहरण प्राचीन काव्यों में स्थल-स्थल पर मिलते हैं। उड़ीसा जाने की कथा भी कल्पित ही ठहरती है, क्योंकि चारों वीसलदेवों में से किसी के भी उड़ीसा विजय करने का प्रमाण नहीं मिलता। वीसल-देव का अपने भतीजे को अपना उत्तराधिकारी नियत करने की घटना भी कल्पना-मात्र ही है।

कवि ने अपने काव्य में सब जगह वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है, इससे भी कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वह वीसलदेव का समकालीन था; परंतु यह कोई जरूरी बात नहीं कि वर्तमान-कालिक क्रिया का प्रयोग करनेवाला कवि समकालीन ही हो। काव्य में वर्णित घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिये बहुधा कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है। नरपति वीसलदेव का समकालीन नहीं बल्कि उससे १५० से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था।

श्रीयुत् नाहटाजी ने 'वीसलदेव रासो' की भाषा के विषय में संदेह प्रकट करते हुए उसे सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा माना है। यद्यपि पीछे से मूल रासो में बहुत-कुछ हेर-फेर हुआ है, फिर भी उसमें प्राचीनता के चिह्न वर्तमान हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि वह वि० सं० १२००-१३०० के आसपास ही रचा गया होगा। नीचे हम उसी समय की भाषा के कुछ उदाहरण देते हैं, जिनके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वीसलदेव रासो' की भाषा का मिलान करने पर इस विषय में संदेह को स्थान न रहेगा।

(१) पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चंपिज्जइ अवरेण॥

(२) जेवडु अंतरु रावण रामहँ तेवडु अंतरु पट्टण गामहँ।

(३) जा मति पच्छइ संपज्जइ सा मति पहिली होइ॥
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ॥

(४) जइ यह रावणु जाईयउ दहमुह इक्कु सरीरु।
जणणि वियंभी चिंतवइ कवणु पियावउ खीरु॥

(५) राणा सव्वे वाणिया जेसलु बड्डउ सेठि।
काहूँ वणिजडु मांडोयउ अम्मीणा गढ हेठि॥

(६) वाढी तो वढवाण वीसारतां न वीसरइ।
सोना समा पराण भोगावह पइं भोगवइ॥

(७) नवजल भरीया मग्गड़ा गयणि धडक्कई मेहु।
इत्थंतरि जरि आविसिइ तऊ जाणीसिइ नेहु॥

इनमें से सं० १ और २ के उदाहरण अनेक विषयों के प्रकांड विद्वान् प्रसिद्ध हेमचंद्राचार्य-रचित अपभ्रंश भाषा के व्याकरण से लिए गए हैं, जो वि० सं० १२०० के आसपास बना था और सं० ३, ४, ५, ६ और ७ के उदाहरण 'प्रबन्धचिंतामणि' से हैं जो जैन आचार्य मेरुतुंग ने वि० सं० १३६१ में बढ़वान में बनाई थी। इन पुस्तकों में ये उदाहरण के रूप में दिए गए हैं, अतएव निश्चित है कि ये इनके निर्माणकाल से पूर्व की रचनाओं से लिए गए हैं।

भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैनों के धर्मग्रंथ (सूत्र) प्राकृत (अर्द्धमागधी) भाषा में होने के कारण जैन लेखक अपने भाषा-काव्यों में प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे हैं, जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गई है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ प्रचलित भाषा में करते थे, जिससे इन दोनों प्रकार के लेखकों की पुस्तकों की भाषा में अंतर होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटो सदियाँ नहीं हैं। एक ही समय में कोई सरल भाषा में अपनी रचना करता है तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है।

'वीसलदेव रासो' के कर्त्ता ने उसकी रचना का समय आरंभ में दिया है, इससे श्रीयुत नाहटाजी ने यह अनुमान किया है कि उसने मुसलमानी प्रथा का अनुसरण किया है; क्योंकि उनके मतानुसार यह प्रथा मुसलमानों के समय से ही प्रारंभ हुई और उसके पहले कवि अथवा लेखक ग्रंथ-रचना का समय अंत में दिया करते थे। परंतु यह केवल अनुमान ही है। रचना का समय ग्रंथ के किसी अंश में देने की पहले कोई प्रथा हो ऐसा पाया नहीं जाता। यह तो रचयिता की रुचि का प्रश्न था। जहाँ पहले के अनेक ग्रंथों में रचना का समय अंत में मिलता है, वहाँ कई में आरंभ में भी पाया जाता है और कितने ही ग्रंथों में तो रचना का समय ही नहीं दिया है। जैन कवि मान-रचित 'राजविलास' नामक ग्रंथ में भी उसकी रचना का समय आरंभ में ही स्तुतियों के बाद दिया है, पर इससे यह कहना अनुचित है कि उसने मुसलमानी प्रथा का अनुसरण किया था। ऐसे उदाहरण और भी मिल सकते हैं।

इन सब बातों पर विचार करने से हमारा मत तो यही है कि 'वीसलदेव रासो' मूल रूप में कार्तिकादि वि० सं० १२७२ (चैत्रादि १२७३) की ही रचना होनी चाहिए और उसका आधार वीसलदेव तृतीय के साथ भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती के विवाह की घटना है। नरपति न तो इतिहासज्ञ था और न कोई बड़ा कवि ही। उसने अपनी रचना लोक-रंजनार्थ बनाई थी। इसलिये उसमें ऐतिहासिकता और काव्य के गुणों की तलाश करना तथा उनके आधार पर उसके बारे में कोई मत स्थिर करना असंगत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

निचुल और कालिदास

प्रोफेसर डी० आर० मनकाद ने भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना की मुखपत्रिका, खंड २०, भाग ३-४ में उपर्युक्त विषय पर एक उपादेय लेख प्रकाशित कराया है। यहाँ हम उसका अनुवाद उपस्थित करते हैं—

मेघदूत, श्लोक १४ पर मल्लिनाथ की टीका से उठे विवाद का अभी अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। उसमें प्रश्न यह है कि हम उस श्लोक से एक प्राकृतिक अर्थ ग्रहण करें या उसमें कालिदास के तथोक्त समकालीन दिङ्नाग और निचुल की ओर एक ऐतिहासिक निर्देश समझें। अभी तक इस विषय पर प्रायः लेखकों ने, उस श्लोक में इन दो कवियों की ओर निर्देश मानकर, पिछला पक्ष ही लिया है। हाल में मुझे एक उल्लेख मिला है जिससे, मेरा विचार है, इस समस्या का अंतिम निर्णय हो जाना चाहिए। श्री कीलाभाई घनश्याम ने, जिन्होंने मेघदूत का गुजराती में अनुवाद किया और उसे १९१३ ई० में प्रकाशित कराया, विचार्य श्लोक पर इस प्रकार टीका की है—

"वल्लभदेव ने, जो मेघदूत के ज्ञात टीकाकारों में प्राचीनतम है और जो ९वीं शती (ईसवी) में काश्मीर में हुआ था, बौद्धमत के प्रचारक इस दिङ्नागाचार्य के संबंध में कुछ नहीं कहा है। अतः यह प्रतीत होता है कि मल्लिनाथ ने दूसरी व्याख्या अपने समय में प्रचलित किसी कथा से ली है। कालिदास, जो निचुल और दिङ्नाग का समकालीन था, इस काव्य का रचयिता नहीं था, प्रत्युत एक दूसरा कालिदास था जो भोज के समय में हुआ था। यह आगे की बात से सिद्ध होता है। एक कालिदास ने, जो भोज के समय में हुआ था, 'नानार्थशब्दरत्न' नामक एक ग्रंथ रचा है और उसके मित्र निचुल ने उस पर 'तरला' नाम की एक टीका लिखी है। उस टीका में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को कालिदास का एक मित्र और भोज का कृपापात्र कहता है। मद्रास-सरकार के अधीन संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों की एक सूची, सन् १६०६ ई०, पृष्ठ ११७५ में उक्त ग्रंथ का प्रारंभ और अंत ऐसा दिया है–

प्रारम्भः—स्वमित्रकालिदासोक्तशब्दरत्नार्थजृम्भिताम् ।
तरलाख्यां लसद्व्याख्यामाख्यास्ये तन्मतानुगाम् ।।

अन्तः—इति श्रीमन्महाराजशिरोमणिश्रीभोजराजप्रबोधितनिचुल-
कवियोगिचन्द्रनिर्मितायां महाकविकालिदासकृतनानार्थशब्द-
रत्नकोशरत्नदीपिकायां तरलाख्यां सर्वं तृतीयं निबन्धनम् ।"

यह उद्धरण निश्चित रूप से बताता है कि निचुल नाम का एक विद्वान् भोज के समय में हुआ था और वह कालिदास का मित्र था, जो स्वयं भी भोज के दरबार में था। अब यह स्पष्ट है कि यह कालिदास मेघदूत का रचयिता नहीं है; क्योंकि भोज से निश्चय ही पूर्व के ग्रंथों में हम मेघदूत की ओर निर्देश पाते हैं। बात यह है कि यह सारा प्रश्न उक्त श्लोक की मल्लिनाथ के द्वारा की गई व्याख्या से उठा है, जिसने दक्षिणावर्तनाथ का अनुसरण किया है। तो स्थिति यह है। मेघदूत पर बहुतेरे टीकाकारों में से चार स्थिरदेव, वल्लभदेव, दक्षिणावर्तनाथ और मल्लिनाथ हैं। इन चारों में से स्थिरदेव और वल्लभदेव १०वीं शती (ईसवी) के हैं, दक्षिणावर्तनाथ १३वीं और मल्लिनाथ १४वीं शती का है। भोज ११वीं शती का है। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि भोज के बाद हुए दो टीकाकार व्याख्या करते हैं कि निचुल कालिदास का एक मित्र था और भोज के पहले हुए दो टीकाकार ऐसी कोई बात नहीं कहते। निष्कर्ष स्पष्ट है। दक्षिणावर्त ने, या उससे पहले, पर भोज के बाद के, किसी टीकाकार ने नानार्थ-शब्दरत्न के कालिदास के साथ मेघदूत के कालिदास को उलझा लिया है और अपनी उर्वरा बुद्धि से दिङ्नाग को भी उस कथा में खींच लिया है।

अतः अब हम यह स्थिर करने की स्थिति में हैं कि मेघदूत, श्लोक १४ का एक ही अर्थ है और वह प्राकृतिक है। उसमें निचुल या दिङ्नाग की ओर कोई ऐतिहासिक निर्देश नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिंदी

उपर्युक्त शीर्षक से श्री बी० पी० 'माधव' ने 'विशाल भारत' भाग २५, अंक ६ में पंजाब में हिंदी की वर्त्तमान अवस्था का एक आवश्यक विवरण और विवेचन दिया है। वह यहाँ उद्धृत है—

सन् १९३१ की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब में ५०३६९४ व्यक्ति देशी भाषाओं में शिक्षित हैं। इनमें से ३२६५५० उर्दू में शिक्षित हैं और १५९०६० हिंदी में। इन अंकों का अभिप्राय यह है कि महाकवि चंदबरदाई, गुरु नानकदेव और गुरु गोविंदसिंह के पंजाब में हिंदी की स्थिति हवा में उड़ा देने योग्य नहीं है। सरकारी शिक्षा-विभाग और पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा प्राप्त अंक और भी आगे बढ़कर कहते हैं कि इस स्थिति में जड़ता नहीं, गति है, प्रगति है। सन् १९३१ में ५६४ विद्यार्थी मैट्रिक में हिंदी माध्यम लेकर बैठे और सन् १९३९ में १८३१ विद्यार्थियों ने हिंदी माध्यम द्वारा परीक्षा दी। मैट्रिक में विषय के रूप में हिंदी लेने-वालों की संख्या सन् १९३४ में ३२७१ थी। सन् १९३९ में यह संख्या ४४४० हो गई। लड़कियों की मिडिल परीक्षा में गत वर्ष ४८०० लड़कियाँ बैठीं, जिनमें से २४०० ने हिंदी ली थी, १५०० ने उर्दू और ८०० ने पंजाबी। यूनिवर्सिटी की हिंदी-रत्न, भूषण और प्रभाकर परीक्षाओं में बैठनेवाले परीक्षार्थियों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। गत वर्ष लगभग ४००० परीक्षार्थी तीनों परीक्षाओं में बैठे थे। युनिवर्सिटी में उर्दू, गुरुमुखी, अरबी, फारसी और संस्कृत की भी ऐसी ही तीन परीक्षाएँ हैं; परंतु ये हिंदी-परीक्षाओं का किसी प्रकार भी सामना नहीं कर सकतीं। सन् १९३८ में युनिवर्सिटी को लगभग १० हजार रुपए संस्कृत-परीक्षाओं से, लगभग २ हजार अरबी परीक्षाओं से, लगभग ८ हजार पंजाबी परीक्षाओं से, लगभग १० हजार फारसी परीक्षाओं से, और लगभग ४ हजार उर्दू परीक्षाओं से मिले। हिंदी परीक्षाओं ने लगभग तीस हजार रुपए दिए! इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकों के साथ यह बात भी सम्मिलित ही समझनी चाहिए कि जहाँ युनिवर्सिटी अन्य परीक्षाओं के लिये काफी धन खर्च करती है, वहाँ हिंदी की परीक्षाओं के लिये उसकी ओर से पढ़ाई तक का प्रबंध भी नहीं है!

दिल्ली की उर्दू-कानफरेंस में मियाँ बशीरअहमद साहब ने कहा बतलाते हैं कि सन् १९३९ में २०,७४८ परीक्षार्थी उर्दू माध्यम लेकर मैट्रिक-परीक्षा में बैठे, जब कि हिंदी माध्यम से परीक्षा देनेवालों की संख्या कुल जमा १८३१ ही थी। इसलिये उन्होंने प्रस्ताव रखा कि पंजाब में पहली से लगाकर दसवीं श्रेणी तक लड़कियों और लड़कों के सब स्कूलों में उर्दू माध्यम ही कर दिया जाय। मियाँ बशीरअहमद साहब ने इन शब्दों में प्रस्ताव उपस्थित कर अपने को 'हक़ीक़त-पसंद' आदमी सिद्ध करने की चेष्टा की है। हमें उनको यह विशेषण देने में कोई आपत्ति न होती, यदि वे यह भी कहते कि अदालत और सरकार के दरबार में हिंदी का कोई स्थान नहीं है। प्रांत की लिपि और भाषा उर्दू मानी गई है। लड़कों की प्रारंभिक शिक्षा के लिये उर्दू का ही विधान है। प्रांत-भर में लड़कों के उन स्कूलों की संख्या दाल में नमक से भी कम है, जिनमें हिंदी से प्रारंभिक शिक्षा आरंभ होती है। और वे स्कूल भी सरकारी सहायता से वंचित हैं! मियाँ बशीरअहमद साहब इन्हीं अंकों पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करते, तो उन्हें पता चलता कि मैट्रिक में हिंदी माध्यम से परीक्षा देनेवालों की संख्या में जहाँ ३०० प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वहाँ उर्दू १५ प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ पाई और अँग्रेजी तो ८ वर्षों में १३७० से ८१७ ही रह गई है!

कुछ ऐसे महानुभाव भी हैं, जिनकी आँखों में हिंदी की यह उन्नति काँटे की तरह खटक रही है! उर्दू-कानफरेंस का प्रस्ताव ऐसे ही महानुभावों के प्रयत्नों का परिणाम है। उर्दू-कानफरेंस कोई भी प्रस्ताव पास करने के लिये उसी तरह सर्वतंत्र स्वतंत्र है, जिस तरह न्याय और तर्क को गोली मारकर कोई भी आदमी कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता है। और भी खेद की बात यह है कि सरकारी शिक्षा-विभाग पर इन प्रयत्नों का प्रभाव भी पड़ रहा है और वह प्रत्येक प्रकार से हिंदी की उन्नति की राह में रोड़े अटकाने के लिये सन्नद्ध हो रहा है।

प्रांत में वयस्क-शिक्षा के लिये प्रयत्न हो रहे हैं। वयस्क-शिक्षा के लिये एक रीडर उर्दू-भाषा और फारसी-लिपि में एवं एक रीडर पंजाबी-भाषा और फारसी-लिपि में छपवाई गई है। शिमला-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने हिंदी रीडर के लिये भी प्रस्ताव पास किया था; परंतु अब तक उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वयस्क-शिक्षा से एक तरह से हिंदी को उड़ा ही दिया गया है। तारीफ यह है कि रोहतक के वयस्कों को भी उर्दू में शिक्षित किया जाना उचित समझा गया है!

लड़कों की प्रारंभिक शिक्षा में हिंदी का कोई स्थान नहीं है। ५वें और ७वें क्लासों से हिंदी प्रारंभ होती है। वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा में बैठनेवाले लड़के सुविधानुसार ५वें या ७वें क्लास से प्रथम भाषा के रूप में हिंदी ले लेते हैं। माध्यम वे अपना उर्दू ही रखते हैं, क्योंकि हिंदी माध्यम से पढ़ाने का कोई प्रबंध सरकारी स्कूलों में भी नहीं है। इस तरह से उर्दू प्रथम भाषा लेनेवालों की संख्या घट रही और हिंदी प्रथम भाषा लेनेवालों की बढ़ रही थी। इस वृद्धि को रोकने के लिये ही, कहा जायगा, शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर महोदय ने एक सरकूलर निकाला—"परीक्षा विद्यार्थी की इच्छानुसार उर्दू, हिंदी और पंजाबी माध्यम से ली जा सकती है; परंतु माध्यम की भाषा निश्चित रूप से वही होगी, जो परीक्षार्थी ने प्रथम भाषा के रूप में ली है।" यह आज्ञा सन् १६४० से लागू हुई है, और इसी वर्ष में प्रथम भाषा के रूप में हिंदी लेनेवालों की संख्या घट गई है। सन् १६३७,३८ और ३६ में क्रमशः ७६०, ७५७ और ७६६ लड़कों ने प्रथम भाषा के रूप में हिंदी ली थी; परंतु सन् १६४० में यह संख्या ६५८ ही रह गई है। अभी तो सरकूलर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ स्थानों पर ही लागू हुआ है, प्रत्येक डिवीजन में लागू होने पर परिणाम और भी शोचनीय हो जायगा।

ऊपर बताया गया है कि मैट्रिक परीक्षा में हिंदी-माध्यम लेनेवालों की संख्या किस तरह बढ़ रही है। न जाने कैसे शिक्षा-विभाग ने इस आशय का एक सरकूलर निकाल रखा है कि जिस स्कूल की प्रत्येक श्रेणी में ८ बच्चे हिंदी माध्यम लेना चाहें, उसमें हिंदी माध्यम से पढ़ाने का भी प्रबंध किया जाय। एक तरह से यह आज्ञा कागजी ही है, क्योंकि अभिभावकों को इसका पूरा ज्ञान नहीं है। दूसरे स्कूलों के अध्यापक लड़कों को हतोत्साह करते हैं। स्कूलों के प्रबंधकों को हिंदी-अध्यापकों का प्रबंध करना पड़ता है। इतनी बाधाओं के बावजूद हिंदी की प्रगति देखकर शिक्षा-विभाग ने एक और सरकूलर इस आशय का जारी किया कि माध्यम बदलने के लिये लड़का डाइरेक्टर महोदय की आज्ञा प्राप्त करे। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सभापति पंडित रामनारायण मिश्र ने इस सरकूलर का उल्लेख कर अपने वक्तव्य में कहा है—"इसका तात्पर्य तो स्पष्ट यही है कि कोई विद्यार्थी हिंदी न पढ़े, क्योंकि वह डाइरेक्टर को प्रार्थना-पत्र डिस्ट्रिक्ट-इंस्पेक्टर के मार्फत भेजेगा। संभव है कि यह पत्र रास्ते में ही रोक दिया जाय, अथवा ६ महीने के बाद यह सूचना मिले कि वह अपनी भाषा बदल नहीं सकता।"

२ नवंबर सन् १९३९ को पंजाब-असेंबली में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए शिक्षा-मंत्री ने जो कुछ कहा, उससे शिक्षा-विभाग की नीति और भी स्पष्ट हो जाती है।* आपने कहा कि उर्दू ही पंजाब में शिक्षा का माध्यम है। जिस दिन समाचार-पत्रों में शिक्षा-मंत्री का यह वक्तव्य प्रकाशित हुआ, उस दिन माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन लाहौर में ही थे। इन पंक्तियों के लेखक ने जब उनका ध्यान

---

* 'पत्रिका, भाग ४४, अंक ३, पृष्ठ ३४४-४५ पर हमने इसपर एक टिप्पणी प्रकाशित की है।—संपादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ओर आकृष्ट किया, तो उन्होंने इस वक्तव्य पर आश्चर्य प्रकट किया। आश्चर्य प्रकट करने की बात ही है। सन् १९३१ में पंजाब यूनिवर्सिटी ने एक जाँच-कमेटी बिठाई थी। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "पंजाब की शिक्षा-नियमावली (दसवाँ संस्करण, सन् १९१७) बताती है कि प्रथम से ८वीं श्रेणी तक हिंदी, उर्दू और पंजाबी शिक्षा का मध्यम है। ९वीं और इससे आगे इनका स्थान अँग्रेजी ले लेती है।" कमेटी ने यह भी लिखा—"मैट्रिक-परीक्षा में विद्यार्थी इतिहास और भूगोल के पर्चे अँग्रेजी या तीनों में से किसी भी एक देशी भाषा में कर सकता है।" कमेटी ने सलाह दी कि यही प्रणाली बहाल रखी जाय। फिर भी शिक्षा-मंत्री महोदय ने एक निराधार वक्तव्य दे डाला और दिल्ली की उर्दू कानफरेंस ने सरकार से उसी वक्तव्य को सरकारी नीति बना लेने का प्रस्ताव पास कर दिया। जैसे बिल्ली छींका टूटने की ताक में ही बैठी थी!

लड़कियों की मिडिल और हिंदी-रत्न, भूषण और प्रभाकर परीक्षाओं के अंकों से मालूम होता है कि पंजाब की लड़कियों में हिंदी का प्रचार अधिक है। इस प्रचार को रोकने के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-बिल का पत्थर गढ़ा गया है। बिल की योजना के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा के लिये ऐसे सम्मिलित स्कूल खोले जायँगे, जिनमें लड़के और लड़कियाँ साथ साथ पढ़ेंगी। इन दिनों प्राथमिक शिक्षा के बालिका-विद्यालयों में तीनों भाषाएँ हैं; पर लड़कों के स्कूल में सिर्फ उर्दू! नई योजना के सम्मिलित स्कूलों में लड़कियों को हिंदी लेने की सुविधा रहेगी या नहीं, यह एक प्रश्न है। यह प्रश्न इसलिये और भी गंभीर हो जाता है कि परीक्षा के तौर पर दो जिलों में ऐसे स्कूल खोले गए हैं। शिक्षा-विभाग की सन् १९३७-३८ की रिपोर्ट में कहा गया है कि इन स्कूलों में एक साथ तीन भाषाएँ पढ़ाने में बड़ी असुविधा होती है। इसके लिये शिक्षा-विभाग एक उपाय सोच रहा है। शिक्षा-मंत्री के वक्तव्य से उस उपाय का अनुमान किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-गणना की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब में १२८४०४१ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करने की आयु की हैं ; किंतु उनमें से कुल २३७५२४ लड़कियाँ ही पढ़ रही हैं। प्रांत के शिक्षा-विभाग ने १८·५ प्रतिशत की इस औसत पर बड़ा खेद प्रकट किया है। एक तरह से सब लड़कियों को शिक्षित करने के लिये ही यह अनिवार्य शिक्षा का बिल बना है। हम मान लेते हैं कि १२ लाख में से कम से कम ६ लाख लड़कियाँ तो प्राइमरी में आयँगी ही। मिडिल के अंक बता रहे हैं कि लड़कियों में से ५० प्रतिशत हिंदी लेती हैं। प्राइमरी में यह औसत अधिक होनी चाहिए। यदि उनको हिंदी लेने की सुविधा न मिली, तो वे हिंदी से वंचित हो जायँगी। केवल भाषा के प्रश्न पर अभिभावक लड़कियों को स्कूलों में दंड भुगते बिना भेजने से न बच सकेंगे। बच भी जायँगे, तो प्राइमरी शिक्षा का प्रबंध उन्हें अपनी जेब से करना पड़ेगा। सरकार को टैक्स भी दें और शिक्षा का प्रबंध भी स्वयं करें, यह असंभव होगा। फलतः लड़कियों को हिंदी का मोह छोड़ना पड़ेगा।

ये तथ्य सिद्ध कर रहे हैं कि हिंदी-विरोधी प्रयत्नों का शिक्षा-विभाग पर काफी प्रभाव पड़ रहा है और उसकी नीति हिंदी-घातिनी होती जा रही है। लाहौर के राष्ट्र-भाषा-प्रचारक संघ ने इसके विरुद्ध आंदोलन शुरू किया है। प्रांतीय सम्मेलन भी कुछ प्रयत्नशील हो रहा है। देखें भविष्य के गर्भ में क्या है।

—कृ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

उमर खैयाम की रुबाइयाँ—रचयिता श्री रघुवंशलाल गुप्त आइ० सी० एस्०; प्रकाशक किताबिस्तान, इलाहाबाद; मूल्य ?

जिस दिन इँगलैंड के रसज्ञ कवि रोजेटी ने 'रुबाइयात् आव् उमर खैयाम' उसके विक्रेता से—दूकान के बाहर डाली हुई, न विकनेवाली पुस्तकों के ढेर में से—एक पेनी (एक आने) में बड़े कौतूहल से खरीदी और फिर रसाप्लुत हो अपने सभी मित्रों को खरिदवाई, उस दिन विश्व में उमर खैयाम का और साथ ही एडवर्ड फिट्जजेराल्ड का कवित्व बड़े चमत्कार से प्रसिद्ध हुआ। उसके आठ सौ वर्ष पूर्व फारस में उमर खैयाम एक बहुज्ञ मनीषी, विशेषत: एक ज्योतिषी के रूप में ही प्रसिद्ध हुए थे। उनकी मुक्तक कविताएँ, रुबाइयाँ (चौपदे), जो उन्होंने 'स्वांत:सुखाय' तथा अपनी मित्रगोष्ठी के विनोद के लिये लिखी थीं, यथेष्ट प्रसिद्ध न हुईं। धीरे धीरे उन्हें सुनकर 'रिंद' मत्त हुए और 'सूफी' भी झूम पड़े। जहाँ-तहाँ रुबाइयाँ संगृहीत हुईं, संग्रहकर्ताओं की रुचि और मति के अनुसार प्राय: सम्मिश्रित और संवर्द्धित होकर। पर उनकी काफी परख न हुई, खैयाम को काव्य-साहित्य में प्रतिष्ठा न मिली। परंतु खैयाम की रुबाइयों में काल, नियति, जीवन की क्षणभंगुरता, जीवन-तत्त्व की दुर्बोधता और क्षणिक सुखों की बहुमूल्यता आदि से संबद्ध मानव-उर की वे चिरंतन वेदनाएँ व्यक्त हुई थीं, जिनमें सारे दर्शन-विज्ञान को विडंबना बताकर मानव को अपनी ओर बरबस आकृष्ट करने की शक्ति थी। उन्हें विश्वप्रसिद्ध करने का श्रेय 'रुबाइयात् आव् उमर खैयाम' (उमर खैयाम की रुबाइयाँ) के पारखी और कुशल कवि फिट्जजेराल्ड ने संपादित किया।

'रुबाइयात् आव् उमर खैयाम' ने कितने ही सहृदयों को आकृष्ट किया; उमर खैयाम क्या थे और उनकी रुबाइयाँ कैसी थीं, वे नास्तिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे या आस्तिक, उनकी रुबाइयों में एक 'रिंद' की ध्वनि थी या एक 'सूफी' की, उनका प्रामाणिक संग्रह कौन है—इन तर्क-वितर्कों में प्रवृत्त किया और अनुवाद के लिये भी प्रेरित किया। फिट्ज़जेराल्ड ने खैयाम को 'विचारशील अधार्मिक' और 'रिंद' मानकर ही उनकी चुनी हुई रुबाइयों का अपनी भाषा में, पर उनके से ही छंद में, स्वतंत्र अनुवाद या छायानुवाद किया।

फिट्ज़जेराल्ड ने प्रायः स्वतंत्र अनुवाद या छायानुवाद ही किया, कोरा अनुवाद कहीं नहीं। तुलनात्मक दृष्टि से उनकी 'रुबाइयात्' को देखने से यह प्रकट होता है कि उन्होंने खैयाम के भावों में रमकर बहुत कुछ नई काव्य-रचना की। इसमें खैयाम के काव्य का बहुत कुछ कायाकल्प या रूपांतर अवश्य हो गया। परंतु इस काव्य-रचना से, इस अनुवाद-कला से, खैयाम का काव्य खिल उठा। कितनी ही भाषाओं में 'रुबाइयात्' के, मूल रुबाइयों के भी, अनुवाद हुए और इनके संबंध में अनुसंधान और विचार हुए।

भारतीय भाषाओं में, हमारे जान में, हिंदी में ही खैयाम की रुबाइयों के सब से अधिक, छः अनुवाद हुए हैं। पूर्वोक्त सुयोग से सफल हो फिट्ज़जेराल्ड ने 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण के बाद तीन और संस्करण निकाले। ७५ रुबाइयों का पहला और १०१ रुबाइयों का चौथा संस्करण प्रसिद्ध हैं। हिंदी में रुबाइयों का पहला अनुवाद, 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण से, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत किया। चुनी हुई मूल रुबाइयों का एक बड़ा अनुवाद श्री इकबाल वर्मा 'सेहर' ने उपस्थित किया। गुप्तजी के अनुवाद के कुछ पीछे श्री केशवप्रसाद पाठक का अनुवाद, 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण से ही, प्रकाशित हुआ। प्रायः इसी समय श्री बलदेवप्रसाद मिश्र का 'मादक प्याला' प्रकाशित हुआ, जो 'रुबाइयात्' के चौथे संस्करण और ४९ मूल रुबाइयों का अनुवाद है। हाल की श्री 'बच्चन'-कृत 'खैयाम की मधुशाला' 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण का ही अनुवाद है। यहाँ किसी तारतमिक विचार का अवसर नहीं है। इनमें यह सामान्यतः लक्ष्य है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके रचयिताओं ने रुबाइयों के एक एक रूप का ध्यान रखते हुए अपनी अपनी रसिकता और कुशलता के अनुसार उनका भावानुवाद किया है।

श्री रघुवंशलाल गुप्त की 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' नई पुस्तक है। यह ७२ पृष्ठों की एक छोटी, सुंदर पुस्तक है। पहले २८ पृष्ठों की भूमिका में विद्वान् लेखक ने 'खैयाम का जीवन', 'रुबाइयाँ', 'रुबाइयों का अनुवाद' और 'रुबाइयों की लोकप्रियता' के विषयों पर अब तक के अनुसंधानों और विचारों के संक्षिप्त परंतु बहुत उपादेय विवेचन प्रस्तुत किए हैं और आत्म-निवेदन किया है। आगे ३१ से ६६ पृष्ठों में ७२ रुबाइयाँ हैं और शेष ६ पृष्ठों के 'परिशिष्ट' में कुछ मूल रुबाइयों के उद्धरण हैं।

प्रस्तुत अनुवाद यथार्थतः नया है, विशेष ढंग का है। यह ढंग वही है जो फिट्ज़जेराल्ड का था—प्राय: स्वतंत्र अनुवाद या छायानुवाद, जिसमें बहुत कुछ नई काव्य-रचना होती है। अनुवादक ने भूमिका में कहा है कि "जो सलूक फिट्ज़जेराल्ड ने उमर खैयाम के साथ किया है, वही सलूक हमने फिट्ज़जेराल्ड के साथ करने का प्रयत्न किया है। उनके चौपदों को तोड़-मरोड़कर नए सिरे से सृष्टि करने का बीड़ा उठाया है, और फिट्ज़जेराल्ड की तरह 'मुक्तक' काव्य का रूप रखते हुए भी, प्रबंधात्मक रूप को भुलाया नहीं है। जहाँ तक हो सका है, उमर खैयाम के मूल भावों को प्रधानता दी है; और कुछ ऐसी रुबाइयाँ भी जोड़ दी हैं जो फिट्ज़जेराल्ड के अनुवाद से संबंध नहीं रखतीं।" श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने रुबाइयों के बँगला अनुवाद के विषय में लिखा है कि "ऐसी कविता को एक भाषा से लेकर दूसरी भाषा के ढाँचे में ढाल देना कठिन है; क्योंकि इस कविता का प्रधान गुण 'वस्तु' नहीं 'गति' है। फिट्ज़जेराल्ड ने भी इसी लिये ठीक ठीक तर्जुमा नहीं किया; मूल के भावों की नए तौर पर सृष्टि की है। अच्छी कविता मात्र की तर्जुमा में नए तौर पर सृष्टि करना आवश्यक है।" इस आप्त-वचन से और फिट्ज़जेराल्ड के अनुवाद की सफलता से उत्साहित होकर गुप्तजी ने उसी ढंग का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि उनकी भूमिका के उद्धरण से सूचित है, गुप्तजी ने अपनी ७२ रुबाइयों की रचना फिट्जजेराल्ड की तथा खैयाम की रुबाइयों के चयन, 'तोड़-मरोड़' और अपनी कल्पना के आधार पर की है। उनकी ५५ रुबाइयों के आधार फिट्जजेराल्ड की 'रुबाइयात्' के चौथे संस्करण में हैं, यद्यपि पहले संस्करण के पाठों तथा मूल रुबाइयों के भावों और उनकी अपनी कल्पनाओं से संयुक्त ही उनके रूप हैं। शेष १७ रुबाइयाँ खैयाम की अतिरिक्त रुबाइयों के भावों और रचयिता की कल्पनाओं पर आधारित हैं। कहीं एक रुबाई फिट्जजेराल्ड की एक पूरी रुबाई का स्वतंत्र अनुवाद है, कहीं एक रुबाई में दो या तीन रुबाइयों के भाव हैं, कहीं एक में फिट्जजेराल्ड की आधी रुबाई और गुप्तजी की कल्पना का योग है, कहीं मूल खैयाम की एक पूरी रुबाई का भाव है, कहीं एक में दो या तीन हैं, कहीं खैयाम और फिट्ज-जेराल्ड के भावों का योग है और कहीं खैयाम और गुप्तजी का योग है—परंतु प्राय: सर्वत्र स्वतंत्र अनुवाद है। पहली ही रुबाई इसका अच्छा उदाहरण है—

जागो मित्र ! भरो प्याला, लो, देखो वह सूरज की कोर
राजअटारी पर चढ़ता है फेंक अरुण किरणों की डोर।
नभ के प्याले में दिनकर को माणिक-सुधा ढालते देख
कलियाँ अधरपुटों को खोले ललक रही हैं उसकी ओर।

इसका पूर्वार्ध फिट्जजेराल्ड की 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण की पहली रुबाई के उत्तरार्ध का स्वतंत्र अनुवाद है और शेष अनुवादक की पूर्ति है। खैयाम की मूल रुबाई में 'सुबह' के, अटारी पर, 'कमंद' डालने की बात है, इस ओर अनुवादक ने ध्यान दिया है। दूसरी पंक्ति में इसका निर्वाह सुंदर है। परंतु 'सूरज की कोर' के डोर फेंककर चढ़ने में रूपक ठीक बनता नहीं। पूर्ति का अंश 'जागो मित्र ! भरो प्याला' इस पुकार के आगे 'माणिक-सुधा' में अखिल प्रकृति की लीनता की सार्थक व्यंजना उपस्थित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ वीं रुबाई 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण की ११वीं, चौथे की १२ वीं रुबाई का अनुवाद है--

दो मधूकरी हों खाने को, मदिरा हो मनमानी जो,
पास धरी हो मर्मकाव्य की पुस्तक फटी-पुरानी जो,
बैठ समीप तान छेड़े, प्रिय, तेरी वीणा-वाणी जो,
तो इस विजन विपिन पर वारूँ मिले स्वर्ग सुखदानी जो।

गुप्तजी की सरस रचना का यह एक उदाहरण है। पाठक तुलना करें। 'a Loaf of Bread' के स्थान पर 'दो मधूकरी' ने 'जो कुछ मिल जाय' की ध्वनि ला दी है। 'A flask of wine' या 'jug of wine' से 'मदिरा हो मनमानी' विशेष भावमय है। फिर 'वीणा-वाणी' के 'तान' छेड़ने पर 'Oh, Wilderness were Paradise enow' से 'इस विजन विपिन पर वारूँ मिले स्वर्ग सुखदानी जो' का भाव कहीं उत्कृष्ट है।

गुप्तजी ने "फिट्ज़जेराल्ड की तरह 'मुक्तक' काव्य का रूप रखते हुए भी प्रबंधात्मक रूप को भुलाया नहीं है।" 'जागो मित्र!' की अरुण आशा से आरंभ करके उन्होंने—

लो चंद्रोदय हुआ, आयु का बीता और एक दिन हाय!
पूर्ण हो गया और एक लो जीवन-गाथा का अध्याय।
पात्र भरो, शशिवदन! कि यह शशि जाकर फिर आवेगा लौट,
लौटेगा न गया अवसर पर, करना चाहे कोटि उपाय।

इस करुण वेदना में 'जीवन-गाथा का अध्याय' अवसित किया है। और आरंभ की 'भरो प्याला' की पुकार से अवसान की 'पात्र भरो' की टेर तक एक ही गूढ़ मत्तता की व्यंजना उन्होंने निबाही है। यह रुबाई 'रुबाइयात्' के पहले संस्करण की ७४वीं, चौथे की १००वीं रुबाई का, मूल रुबाई से मिलता स्वतंत्र अनुवाद है। पाठक इसकी सरसता देखें।

और प्रकार की बानगी अब पाठक स्वयं देखें। गुप्तजी ने ऊपर उद्धृत अपनी प्रतिज्ञा का सुंदर निर्वाह किया है, खैयाम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिट्जजेराल्ड के भावों में रमकर बहुत कुछ 'नए सिरे से सृष्टि' की है। कविता के अनुवाद में भाषांतर नहीं, रूपांतर ही सफल होता है। देखना यह होता है कि मूल कवि की आत्मा अंतरित न हो, उसकी व्यंजना सफल हो। साथ ही अनुवाद मूल निरूपण का जितना निर्वाह कर सके अच्छा है। गुप्तजी ने अपनी 'नए सिरे की सृष्टि' में मूल खैयाम का भी ध्यान रखा है, इससे उन्होंने खैयाम की आत्मा को, फिट्जजेराल्ड के अनुसार ही, काफी सुंदरता से व्यक्त किया है। मूल निरूपणों का निर्वाह भी उन्होंने मार्मिकता से किया है, यद्यपि अपनी कल्पना से उन्होंने बहुत काम लिया है।

रही कुछ अकुशलता, असफलता की बात। इस संबंध में गुप्तजी ने "हम अपनी त्रुटियों को भली भाँति जानते हैं। खड़ी बोली के पंडितों को तो हमारी भाषा कई स्थानों में खटकेगी। 'फिर' के स्थान में 'फेर', 'जहाँ' के स्थान में 'जँह', और 'नित', 'बहु', 'सँग' इत्यादि शब्दों के प्रयोग से वे अवश्य अप्रसन्न होंगे। पिंगल की कसौटी पर भी हमारे छंद एक से नहीं उतरेंगे। अपनी अयोग्यता के अतिरिक्त हम इन त्रुटियों का क्या जवाब दें? किंतु संभव है कि हिंदी भाषा के वे हितैषी, जो सूर, तुलसी, कबीर और देव की स्वच्छंदगामिनी भाषा को व्यर्थ नियमों में जकड़ी हुई और कवि की सुधावर्षिणी जिह्वा से उतरकर विद्यार्थियों के कोषों और कुंजियों में पड़ी हुई नहीं देखा चाहते, संभव है वे हमारी उच्छृंखलता पर प्रसन्न भी हों।" यह लिखकर अपनी रचना में कुछ 'त्रुटियाँ' स्वीकार करते हुए उनके स्वतः परिहार की आशा की है। प्रत्येक भाषा की, उसकी रचना की अपनी मर्यादा होती है, उसका अपना प्रमाण बन जाता है। उसके अनुसार ही वह चलती और जँचती है। गुप्तजी को इसका ध्यान रखना ही होगा। उनकी रचना में हमें 'गुणराशिनाशी' दोष नहीं मिले। कुछ 'त्रुटियाँ' और विरसताएँ जो लक्ष्य हैं वे उनकी बढ़ती कुशलता से जाती रहेंगी, ऐसा हमें विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तजी की इस पहली कृति का अंतरंग और बहिरंग, दोनों सुंदर हैं। इस पर उन्हें बधाई देते हुए हिंदी काव्य में हम उनसे बहुत आशाएँ रखते हैं। अंत में 'किताबिस्तान' को इस सुंदर प्रकाशन के लिये हम सहर्ष बधाई अथवा 'मुबारकबादी' देते हैं।

—कृ।

द्रव्यसंग्रह—ले० श्री नेमिचंद्र; टीकाकार श्री भुवनेंद्र 'विश्व'; प्रकाशक सरल जैन ग्रंथमाला जबलपुर; पृष्ठ-संख्या ८७; मू० ।-)।

मूल ग्रंथ के रचयिता जैनाचार्य नेमिचंद्र हैं। ग्रंथ में ५८ प्राकृत-गाथाएँ हैं। 'विश्व' जी ने उन्हीं की हिंदी टीका की है। छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थ, जैनधर्म के ये ही मूल तत्त्व हैं। सुयोग्य ग्रंथकार ने अपनी इस छोटी सी रचना में, उन्हीं मूलतत्वों का, संक्षेप में, बड़े सुंदर ढंग से निरूपण किया है। जैनधर्म के नए अभ्यासियों के लिये यह रचना अति उत्तम प्रमाणित हुई है। इसी से जैन-शालाओं में इसके पठन-पाठन का अधिक प्रचार है। 'विश्व'जी ने, जो कि इस ग्रंथमाला के प्रकाशक भी हैं, ग्रंथमाला के उद्देश्य के अनुसार बालक-बालिकाओं को सरल से सरल रूप में जैन-धर्म के स्वरूप को समझाने के लिये इस ग्रंथ की हिंदी टीका की है। प्रत्येक गाथा के नीचे उसकी संस्कृत छाया दी है, उसके नीचे अन्वय और अर्थ दिया है और उसके नीचे भावार्थ दिया है। यद्यपि टीका बुरी नहीं है तथापि उसे हम 'सरल से सरल' नहीं कह सकते। भावार्थ की भाषा 'पंडिताऊ' है और उसमें प्रायः उन्हीं शब्दों को क्रमवार करके दोहरा दिया गया है जो 'अन्वयार्थ' में कहे गए हैं। भाषा का नमूना देखिए—'सिद्ध अथवा मुक्तजीव के छोड़े हुए पहिले के शरीर से कुछ कम आकार के उनके आत्मा के प्रदेश होते हैं।' इससे पाठक लेखक के आशय को स्पष्ट नहीं समझ सकता। इसी तरह अंतिम पद्य के भावार्थ में गाथा के 'सुदपुण्णा' शब्द के आधार पर 'द्रव्यश्रुत और भावश्रुत के ज्ञाता' लिखा है। सरलता और बालबुद्धि को दृष्टि में रखते हुए यह लेख उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कहा जा सकता। यद्यपि 'द्रव्यश्रुत' और 'भावश्रुत' के नीचे उनका अर्थ दे दिया गया है, किंतु वह अर्थ भी 'इंद्र की टीका विडौजा' का स्मरण कराता है। लिखा है—'वर्तमान परमागम रूप द्रव्यश्रुत, तज्जन्य स्वसंवेदन रूप भावश्रुत।' बेचारे बच्चों की बात तो छोड़ दीजिए, बड़े बड़े भी इसे न समझ सकेंगे। शब्दों की जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें से कुछ परिभाषाएँ इसी ढंग की हैं। जैसे, 'इंद्रिय—आत्मा के अस्तित्व को बतानेवाला अथवा परोक्षज्ञान उत्पन्न करने का साधन। आतप—सूर्य तथा सूर्यकांतमणि में रहनेवाला गुणविशेष।' ऐसे ऐसे सरल शब्दों को 'हव्वा' बना दिया गया है। कोई कोई परिभाषा अशुद्ध भी है। जैसे 'मोहनीय—जो चरित्र को न होने दे।' यह परिभाषा मोहनीय के एक भेद चारित्र्य-मोहनीय की हो सकती है, किंतु सम्यक्त्व और चारित्र्य को रोकनेवाले मोहनीय की नहीं हो सकती। कहीं कहीं अन्वयार्थ में गाथा के शब्दों को छोड़ दिया गया है। जैसे गा० ६ में 'भणियं' का और गा० ५८ में 'सुदपुण्णा' का अर्थ छोड़ दिया गया है। इन सब दोषों के होते हुए भी प्रकाशक का परिश्रम प्रशंसनीय है, क्योंकि उन्होंने एक-दो नकशे और चार्ट आदि देकर पुस्तक को आकर्षक बनाने का विशेष ध्यान रखा है। आशा है, पुस्तक का पुन: संशोधन कराके वे उसे विशेष लाभदायक बनाने का भी प्रयत्न करेंगे।

छहढाला—ले० श्री दौलतरामजी, टीकाकार पं० फूलचंदजी शास्त्री; प्रकाशक सरल जैन ग्रंथमाला, जबलपुर, पृष्ठ-सं० ९८; मूल्य ।-)।

अठारहवीं शताब्दी में जयपुर में पं० दौलतरामजी हिंदी के एक अच्छे कवि हो गए हैं। छहढाला उन्हीं की एक कृति है। इसमें छ: ढाल हैं, इसी से इसका नाम छहढाला रखा गया है। इसकी रचना बड़ी ही हृदयग्राही है। सुंदर और सरल पद्यों में संसार और धर्म का स्वरूप बड़ी बुद्धिमानी के साथ बतलाया गया है। प्रत्येक जिज्ञासु पाठक के अध्ययन और कंठ करने की चीज है। उसी छहढाले का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी अनुवाद हमारे सामने है। अनुवाद में प्रत्येक छंद के नीचे उसका अन्वय, कठिन शब्दों का अर्थ और अंत में भावार्थ दिया है। भावार्थ लिखने में सावधानी से काम नहीं लिया गया प्रतीत होता। अनेक पद्यों के भावार्थ में पद्य का पूरा आशय नहीं आ सका है, जिसका आना जरूरी था। जैसे—'रागादि प्रगट जे दुःखदैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥' (पृ० १६) का भावार्थ इस प्रकार है—"राग आदि स्पष्ट रूप से दुःख देते हैं, इनसे सुख कभी नहीं होता। जैसे—यह लड़का मेरा है, यह राग है—ममता है। जब लड़का मर जाता है तब रोता है। लड़के के कारण ही अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं।" इसमें 'तिनही को सेवत' इत्यादि अंतिम पंक्ति का आशय नहीं आ सका है। इसी प्रकार पृ० ३९ में उपग्रहन अंग का स्वरूप बतलाते हुए 'वा निज-धर्म बढ़ावै' का आशय बिल्कुल ही छूट गया है, जो कि उपग्रहन अंग का ही दूसरा स्वरूप है। पृ० ४९ में 'मुनिव्रतधार अनंतवार ग्रीवक उपजायो' का अर्थ 'अनंतवार नव ग्रैवेयकों में पैदा होकर' लिखा है। इसमें 'मुनिव्रतधार' शब्द का कोई आशय ही नहीं आने पाया। कहीं कहीं भावार्थ में थोड़ा सा अर्थ-विपर्यास भी हो गया है। जैसे पृ० १६ में 'शुभ अशुभ बंध के फल मँझार' का अर्थ 'शुभ और अशुभ बंध का फल मिलने पर' किया है। होना चाहिए था—'फल में'। कहीं कहीं शब्दार्थ भी ठीक नहीं है, जैसे 'निराकुलता = आनंद'। पृष्ठ ६६ में सविपाक निर्जरा को अकाम निर्जरा और अविपाक निर्जरा को सकाम निर्जरा बतलाना भी ठीक नहीं है। अकाम निर्जरा सविपाक निर्जरा से एक पृथक् चीज है, जैसा कि पृ० ११ पर 'कभी अकाम निर्जरा करै' पद के शब्दार्थ में अनुवादक ने अकाम निर्जरा का जो स्वरूप बतलाया है, उससे ही ज्ञात होता है। अनुवाद में से यदि उक्त प्रकार की अशुद्धियों का शोधन कर दिया जाय तो अनुवाद के अच्छे होने में संभवतः किसी को आपत्ति न हो।

—कैलाशचंद्र शास्त्री।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुटका गुरुमत-प्रकाश—प्रकाशक सर्वहिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब); १६३६ ई०; मूल्य ?

गुरुवाणियों का यह एक संग्रह है जिसमें कबीरदासजी के कुछ पदों के साथ साथ सोहिला (उत्सव-संबंधी गीत) के भी कुछ पद दिए गए हैं। परंतु प्रधानता इसमें गुरु नानकजी की रचनाओं की ही है। इन रचनाओं में काव्य के कुछ गुण तो अवश्य मिल जाते हैं; परंतु काव्य के कलापक्ष का इसमें अभाव ही सा जान पड़ता है। फिर भी कबीरदास जी की साखी और सबदियों के समान लोक-मंगल की भावना इन पदों में अवश्य वर्तमान है।

'गुरुमतप्रकाश' को पढ़ने से यह मालूम होता है कि धार्मिक पचड़ों में पड़कर इधर-उधर भटकते हुए गुरु नानक जी अंततोगत्वा इसी सिद्धांत पर पहुँचे कि घर में या बाहर—कहीं भी रहकर—ईश्वर की भक्ति तथा मन को वश में करने ही से सच्ची शांति और मोक्ष मिल सकता है। आवागमन और मुक्ति के संबंध में उनका भी वही सिद्धांत प्रतीत होता है जो आर्य्यों का था। उन्होंने केवल उन सिद्धांतों के अंदर फैले हुए भ्रम और मिथ्यावाद का ही खंडन किया है। संभवत: यही कारण है कि उनकी रचनाएँ संस्कृत-गर्भित और संस्कृत-सार-गर्भित भी हैं।

प्रस्तुत संग्रह की भाषा एक ओर संस्कृत और दूसरी ओर अरबी तथा फारसी से भरी खड़ी बोली और पंजाबी है। बाल्यकाल से ही गुरु नानक की रुचि धर्म की ओर थी और उन्होंने कई धर्मों का अध्ययन भी किया था। संभवत: इसी लिये उनकी रचनाओं में एक ओर ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत के श्लोक ही रख दिए गए हैं तो दूसरी ओर अरबी या फारसी के कलाम ही ज्यों के त्यों आ गए हैं। प्राय: क्रिया ही आकर उन्हें खड़ी बोली का रूप देती है। उदाहरण के लिये ये दो छंद देखिए—

"प्रमाथं प्रमाथे सदा सरब साथे। अगाध सरूपे निरबाध् बिभूते।"

"गनीमुल खिराज हैं, गरीबुल निवाज हैं। हरीफुल सिकन हैं, हिरासुल फिंकम हैं।"

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखमनी—संग्रहकर्त्ता सिक्ख गुरु अर्जुनदेव; प्रकाशक सर्व-हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब); १६३६ ई०; मूल्य १)।

एक हिंदी-प्रेमी पाठक के हृदय को सुखमनी की जो वस्तु विशेष आकर्षित करती है, वह है इसकी भाषा। इसकी भाषा साफ़-सुथरी और सुगठित है। सरल तो इतनी है कि थोड़ा भी हिंदी का ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति इसके भावों को सरलता से हृदयंगम कर सकता है। इसमें 'श्लोक' और 'अष्टपदी' नामक दो प्रकार के छंद हैं। श्लोक प्रायः दोहा के समान और अष्टपदी प्रायः चौपाई के समान होती है। तुलसीकृत रामायण में जिस प्रकार प्रायः आठ चौपाइयों के बाद एक दोहा आता है, उसी प्रकार सुखमनी में भी आठ चौपाइयों (अष्टपदियों) के बाद साधारणतया एक श्लोक आता है। प्रस्तुत पुस्तक में सात्त्विक गुणों और पदार्थों की महिमा ही गाई गई है। उदाहरणार्थ—सिमरन (स्मरण), सत्संग, ब्रह्मज्ञानी इत्यादि जो विषय उठाया गया है उसकी महिमा इतनी गाई गई है कि पढ़ते पढ़ते पाठकों का चित्त ऊब जाता है। अच्छा हुआ होता यदि इसमें उन सात्त्विक गुणों या पदार्थों के लक्षण और उनको प्राप्त करने के साधन भी बतलाए गए होते। पुस्तक के आरंभ में संग्रहकर्त्ता गुरु अर्जुनदेव की साधारण जीवनी भी दी हुई है। सुखमनी सच्चे सुख और शांति के मार्ग को वस्तुतः प्रकाशित करने में मणि के समान है।

सिक्ख-धर्म के अमूल्य रत्नों को देवनागरी लिपि में छपवाकर हिंदी-जगत् के सम्मुख रखने का सर्वहिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब) का यह प्रयत्न सर्वथा प्रशंसनीय है।

—सच्चिदानंद तिवारी, एम्० ए०।

रणमत्त संसार [एकतालीस नक्शों और चार्टों सहित]—लेखक श्री वेंकटेशनारायण तिवारी; प्रकाशक इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; प्रांतीय सरकार के शिक्षाप्रसार विभाग द्वारा योरप और योरप तथा अफ्रीका के दो बृहदाकार मानचित्रों के साथ संयुक्त प्रांत के सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी वाचनालयों में प्रचारार्थ वितरित; आकार डबल क्राउन १६ पेजी; पृ० सं० ४+४+१६०=१६८ ।

यह हिंदी के लिये महत्त्व की बात है कि अब हममें समय के साथ चलने की प्रवृत्ति दृढ़ होती जा रही है। प्रस्तुत प्रकाशन इसका एक उदाहरण है। विद्वान् लेखक ने 'पुस्तक को समयोपयोगी बनाने की भरसक चेष्टा की है' और इसे एक बार आद्यंत पढ़ लेने पर प्रत्येक पाठक स्वीकार करेगा कि लेखक को अपनी चेष्टा में यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक में तीन खंड हैं। प्रथम खंड वर्तमान योरपीय युद्ध का संक्षिप्त इतिहास है। दूसरे खंड में मानचित्र हैं। पहले भारत के सूबों, रियासतों, मुस्लिम लीग की सम्मति के अनुसार भारत के हिंदू विभाग और मुस्लिम विभाग तथा भारतवर्ष के पूर्वी और पश्चिमी पड़ोसियों के मानचित्र हैं। प्रत्येक मानचित्र के बाद संक्षेप में लेखक ने उस देश की जनसंख्या, क्षेत्रफल, सांपत्तिक शक्ति, आवश्यकताओं और भौगोलिक दशा को दृष्टि में रखते हुए यह बताया है कि वर्तमान युद्ध में उस देश की क्या स्थिति है, उसकी उन्नति अथवा अवनति का क्या कारण है तथा इससे किसी दूसरे देश पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी खंड में मानचित्रों के बाद शत्रु राष्ट्रों के सांपत्तिक शक्ति-साधन-संबंधी कई महत्त्वपूर्ण चार्ट और आँकड़े हैं। तीसरे खंड में १३ परिशिष्ट दिए गए हैं जिनमें केवल आँकड़े हैं। ये आँकड़े क्षेत्रफल, जनसंख्या, सिक्के, विनिमय, प्रत्येक प्रकार के लड़ाकू जहाज, जल, स्थल तथा वायुसेना आदि के हैं जिनका संबंध वर्तमान महायुद्ध से है अथवा जिनका प्रभाव उस पर पड़ रहा है।

वर्तमान महासमर के पृष्ठदेश में अनेक ऐसी जटिल समस्याओं का हाथ रहा है जिनका ज्ञान साधारण पाठकों को नहीं है। अब भी बालकन की उलझन बढ़ती ही जाती है और इसके कारण सामरिक परिस्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हो सकता है। अभी कल की बात है, रूमानिया-नरेश को नाजीवाद के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा है और लिखते समय तक इतना समाचार मिल चुका है कि वहाँ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पसंख्यक जर्मन उपनिवेश माँग रहे हैं। इसका परिणाम क्या होगा यह भविष्य ही बता सकता है। आज के वैज्ञानिक साधनों ने दुनिया को इतना छोटा बना डाला है कि योरप में जो होली जल रही है उसकी आँच से समूचा संसार तप रहा है। हमारे लिये यह आवश्यक हो गया है कि योरपीय समर को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें, वरन् उसे समझें, उस पर विचार करें और इसका प्रयत्न करें कि उस आग को और ईंधन न मिले। जहाँ तक समझने और विचार करने का संबंध है, इस पुस्तक की सहायता पग पग पर ली जा सकती है। सामरिक घटनाओं पर यत्र तत्र लेखक ने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अपने विचार भी व्यक्त किए हैं जिनका अपना अलग महत्त्व है। उनसे भी पर्याप्त सहायता मिल सकती है। जहाँ तक पता है, हिंदी में अपने ढंग की यह सर्वप्रथम रचना है। प्रांतीय सरकार के शिक्षाप्रसार-विभाग ने इसका वितरण कर जनता का बड़ा उपकार किया है।

—रामबहोरी शुक्ल।

——

समीक्षार्थ प्राप्त

(फाल्गुन—श्रावण)

अनुचित प्रेम—लेखक श्री पन्नालाल; प्रकाशक राजबहादुर सक्सेना, नाला मछरहट्टा फर्रुखाबाद; मूल्य १)।

आदर्श-पुरुष—लेखक श्री गंगाप्रसाद पांडेय; प्रकाशक बोधराम दुबे, शिक्षा-मंत्री, उड़ीसा; मूल्य ।।।)।

आनंद शब्दावली—संकलयिता श्री रामचन्द्र वर्मा; प्रकाशक शिक्षा-विभाग, बिलासपुर राज्य।

कर्मवीर—लेखक और प्रकाशक श्री विट्ठलदास पांचोटिया; १३९।२ रसारोड कालीघाट, कलकत्ता; मूल्य ।।)।

कसक—लेखक राय दुर्गाप्रसाद रस्तोगी; प्रकाशक आदर्श रस्तोगी प्रकाशन भवन, प्रयाग; मूल्य १)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानून कब्जा आराजी—लेखक श्री विश्वंभरदयाल; प्रकाशक रामनारायणलाल, प्रयाग; मूल्य ॥≈) ।

कानून कर आमदनी भारतवर्ष—लेखक श्री विश्वंभरदयाल, विश्वेश्वरदयाल; प्रकाशक रामनारायणलाल, प्रयाग; मूल्य ॥≈) ।

कुंकुम—लेखक श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; प्रकाशक साहित्य-निकेतन, कानपुर; मूल्य ॥।) ।

खादी और गादी की लड़ाई—लेखक आचार्य विनोबा; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, दिल्ली; मूल्य ≈) ।

श्रीगंगास्नान—लेखक और प्रकाशक सनातन धर्म विद्यालय, चँदौसी; मूल्य ≡) ।

गुड़पाक विज्ञान—लेखक श्री माताप्रसाद गुप्त; प्रकाशक नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य ॥) ।

ग्रामसेवा—लेखक महात्मा गाँधी; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, दिल्ली; मूल्य ≈) ।

चंद्रगुप्त मौर्य और अलेक्जेंडर की भारत में पराजय—लेखक और प्रकाशक श्री हरिश्चंद्र सेठ, के० ई० कालेज, अमरावती; मूल्य १) ।

चारु चरितमाला भाग १—प्रकाशक मैथिल हिंदी साहित्य प्रकाशन विभाग, अजमेर; मूल्य –)॥ ।

चित्रपटी—रचयिता श्रीबड़दा वकील; प्रकाशक ओरिएंटल आर्ट गेलरी ऐंड स्कूल, मेरठ; मूल्य १॥) ।

जवाहरलाल नेहरू—लेखक श्री शिवनारायण टंडन; प्रकाशक साहित्य-निकेतन, कानपुर; मूल्य ≈)॥ ।

जीवनचरित स्वामी रामतीर्थ—प्रकाशक रामतीर्थ पब्लिकेशन, लखनऊ; मूल्य ३) ।

जेबी वैद्य—लेखक श्री रामप्रसाद मिश्र दाधीच वैद्य; प्रकाशक प्रभाकर पुस्तक विभाग नागौर; जे० रेलवे; मूल्य ।≈) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन धर्म में अहिंसा—लेखक श्री शीतलाप्रसाद; प्रकाशक दिगंबर जैन पुस्तकालय, सूरत; मूल्य १) ।

झूठ सच—लेखक श्री सियारामशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी; मूल्य २) ।

'टी' शाला—लेखक श्री शालिग्राम बी० ए०, 'रञ्जन'; प्रकाशक श्रीप्रतापनारायण, सुषमानिकुंज, २६५ मुट्ठीगंज, प्रयाग; मूल्य १) ।

दर्जी-विज्ञान—लेखक श्री टीकाराम पाठक; प्रकाशक शिल्प-कला-विज्ञान-कार्यालय, अयोध्या; मूल्य १॥) ।

दाधीच जाति भास्कर—लेखक और प्रकाशक श्री रूपनारायण शास्त्री, जयपुर सिटी ।

धर्मविज्ञान प्रथम खंड—लेखक श्री स्वामी दयानंद; प्रकाशक भारतधर्म महामंडल, बनारस; मूल्य २) ।

नवजीवन संचार—लेखक श्री रघुनाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक फाइन आर्ट प्रेस, अजमेर; मूल्य ≡) ।

नाक में नकेल—श्री बालमुकुंद मिश्र; प्रकाशक ओंकारदेव मिश्र, देहली; मूल्य ≈) ।

नीर क्षीर—लेखक श्री गंगाप्रसाद पांडेय; प्रकाशक नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य १॥) ।

परित्यक्ता—लेखक और प्रकाशक श्री अक्षयकुमार जैन;सरस्वती मंदिर, विजयगढ़; मूल्य ॥) ।

पांडव यशेंदु चंद्रिका—लेखक स्वरूपदास; संपादक भैरूसिंह तवँर; प्रकाशक क्षत्रिय रिसर्च सोसायटी, एलगिन रोड, दिल्ली; मूल्य ३॥) ।

पारिजात—लेखक श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य ४) ।

पूजा (गद्यकाव्य)—लेखक श्री रामप्रसाद विद्यार्थी; प्रकाशक शंकर-सदन, आगरा; मूल्य १) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राच्य दर्शन समीक्षा—लेखक साधु श्रीशांतिनाथ; प्रकाशक डाक्टर पेसुमल, १३ क्लेटनरोड, कराची।

प्रीतम की गली में—लेखक श्री गुरुदासराम साहब; प्रकाशक राधास्वामी सत्संग, आगरा; मूल्य १)।

प्रेमपथ—लेखक श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य २)।

फाउस्ट—लेखक श्री योहान वौल्फगांग गेटे; अनुवादक श्री भोलानाथ शर्मा, प्रकाशक वैश्य बुकडिपो, बरेली; मूल्य २।)।

बिहार और हिंदुस्तानी—प्रकाशक विद्यापति हिंदी-सभा, दरभंगा; मूल्य ।)।

श्रीमद्भगवद्गीता भाग १-२—टीकाकार स्वामी रामतीर्थ; प्रकाशक, रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ; मूल्य ६)।

भारतपारिजातम्—लेखक और प्रकाशक श्री भगवदाचार्य, लहेरीपुरा, बड़ौदा; मूल्य ३।।)।

भारतमाता—लेखक स्वामी रामतीर्थ; प्रकाशक रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ; मूल्य १)।

भाषावाक्यपृथक्करण—लेखक श्री रघुनाथ दिनकर काणे; प्रकाशक के० आर० काणे एंड ब्रदर्स, जबलपुर; मूल्य ।—)।

मणिधारी श्री जिनचंद्र सूरि—लेखक श्री अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा; प्रकाशक शंकरदान शुभैराज नाहटा, ५।६ आरमेनियन स्ट्रीट, कलकत्ता; मूल्य ≡)।

मथुरा गाइड—लेखक श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी; प्रकाशक जमुना प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा; मूल्य —)।।।

मन की मनुहार—लेखक श्री श्यामसुंदरलाल याज्ञिक; प्रकाशक साहित्य-परिषद्, मथुरा; मूल्य =)।

मनुष्य-विकास—लेखक श्री रामेश्वर; प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य १।)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा कबीर—लेखक श्री मोहम्मद हनीफ; प्रकाशक नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य ।)।

महाभारत खंड २५—लेखक, श्री श्रीलाल खत्री; प्रकाशक महाभारत पुस्तकालय, अजमेर; मूल्य ६।)।

माननीया श्रीमती पंडित—लेखक, राय दुर्गाप्रसाद रस्तोगी, प्रकाशक रस्तोगी प्रकाशन-भवन, प्रयाग; मूल्य २)।

मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग—लेखक श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ; प्रकाशक आर्केयालाजिकल डिपार्टमेंट, जोधपुर; मूल्य ५)।

मैं भूल न सकूँ—संपादक श्री जयन्त; प्रकाशक विजय पुस्तक भंडार, श्रद्धानंद बाजार, देहली; मूल्य १)।

राणा शक्ति मिलन—प्रकाशक नवजवान प्रकाशन समिति, गोरखपुर; मूल्य =)॥।

श्रीरामगीता—लेखक 'विंदु'; प्रकाशक कथा कार्यालय, वृंदावन।

रामवर्षा भाग १-२—लेखक स्वामी रामतीर्थ; प्रकाशक राम-तीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ; मूल्य १॥)।

रूपांतर—लेखक श्री जगन्नाथप्रसाद; प्रकाशक साहित्य-मंडल, बलरामपुर (अवध); मूल्य ॥)।

लिपि-कला—लेखक और प्रकाशक श्री गौरीशंकर भट्ट; मस-वानपुर, कानपुर; मूल्य ।)।

बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन—लेखक श्री पृथ्वीसिंह मेहता; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य २)।

बिहार का चित्रित गौरव—लेखक श्री राधाकृष्ण; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य १)।

वैदिक संध्या—लेखक श्री इच्छाराम शर्मा; प्रकाशक मैथिल-बंधु कार्यालय, अजमेर; मूल्य -)।

व्याकरण-प्रवेशिका—लेखक श्री रघुनाथ दिनकर काणे; प्रकाशक के० आर० काणे ऐंड ब्रदर्स, जबलपुर; मूल्य ।)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा समीक्षा—लेखक श्री कालिदास कपूर; प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग; मूल्य ॥।)।

सांगीत नरसी भक्त—लेखक श्री विश्वेश्वरदयालु; प्रकाशक हरिहर प्रेस, बरालोकपुर, इटावा;

साकेत—एक अध्ययन—लेखक श्री नगेंद्र; प्रकाशक साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा; मूल्य १॥)।

साकोरी का संत—श्री ईशनारायण जोशी; प्रकाशक खान साहब डाकूर एस० आर० मसालेवाला, भोपाल; मूल्य ।≈)।

स्वामी रामतीर्थ के दश आदेश—लेखक स्वामी रामतीर्थ; प्रकाशक रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ; मूल्य १)।

स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश—लेखक स्वामी रामतीर्थ; प्रकाशक रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ; मूल्य १॥)।

हरसू ब्रह्म मुक्तावली—लेखक श्री अजगरनाथ; प्रकाशक श्री महावीरप्रसाद राजवैद्य, चैनपुर।

हरसू विनोद—लेखक श्री विश्वेश्वरदयाल; प्रकाशक श्री महावीरप्रसाद राजवैद्य, चैनपुर।

हिंदी के सामाजिक उपन्यास—लेखक श्री ताराशंकर; प्रकाशक मध्यभारत हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर; मूल्य १।)।

हिल्लोल—लेखक श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन'; प्रकाशक शांति-सदन, काशी-विश्वविद्यालय, काशी; मूल्य १)।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध

महाभारत का संशोधित संस्करण

महाभारत हमारा एक महामहिम ग्रंथ है। वह वीरकाव्य के साथ एक धर्मकाव्य है और एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें "अनेक युगों की भारतीय संस्कृति के दर्शन चलते चित्रपट के समान" प्राप्य हैं। उसके स्वरूप की परंपरा के अनुसंधान और उसके प्रामाणिक संस्करण के संपादन की आवश्यकता युगों से बनी थी। कुछ वर्ष हुए, पूने के धुनी और पारखी पंडित डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर ने भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट से ऐसे संशोधित संस्करण के संपादन की एक व्यापक और व्यवस्थित योजना चलाई है। सौभाग्य से उन्हें देश और विदेश के भी अनेक योग्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त है। उस महाग्रंथ के विभिन्न पर्वों का संपादन अधिकारी विद्वानों द्वारा हो रहा है। यह एक महान् सांस्कृतिक समारंभ है। अभी पहले, पाँचवें और छठे खंडों में आदिपर्व, विराटपर्व और उद्योगपर्व प्रकाशित हुए हैं। सर्वत्र विद्वानों ने इनका स्वागत किया है और इनके कुशल संपादकों तथा प्रधान संपादक को बधाइयाँ दी हैं।

गत २२ आषाढ़ को पूने में दीवान बहादुर के० एम्० झवेरी के सभापतित्व में प्रधान संपादक डा० सुकथनकर ने औंध के उदार श्रीमान् राजा साहब को नवप्रकाशित उद्योगपर्व भेंट किया है। उस अवसर पर उन्होंने जो वक्तव्य पढ़ा उससे इस समारंभ के गौरव का परिचय मिलता है। उन्होंने बताया कि महाभारत के संपादन का कार्य केवल उसका पाठ-संपादन नहीं है, प्रत्युत उसके हस्तलिखित ग्रंथों की परंपरा का अनुसंधान है, जो कार्य उस महाकाव्य के इतिहास में अब ही उठाया गया है। इस कार्य के अंतर्गत प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियों का शोध, प्राप्त प्रतियों की तुलना, तुलना से पाठ का संकलन, पाठ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ प्रकाश्य समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत करना और इस सामग्री को मुद्रित कराना—ये सब कर्तव्य हैं।

शेष पर्वों में सभापर्व, आरण्यकपर्व और भीष्मपर्व के संभवत: आगामी वर्ष तक प्रकाशित हो जाने से इस कार्य का ४५% भाग पूरा हो जायगा तथा ४०,००० से कुछ कम श्लोकों का शोधपूर्ण संकलन और इस संस्करण के लगभग ४,५०० पृष्ठों का मुद्रण हो जायगा। प्राय: साढ़े तीन लाख रुपए इस कार्य के लिये प्राप्त हो चुके हैं। इसके संपूर्ण संपादन के लिये अभी और धन की अपेक्षा होगी।

हमें सविश्वास आशा है कि अपेक्षित धन और जन की यथेष्ट सहायता से यह महाभारत-यज्ञ यथासमय संपूर्ण होगा।

पत्रिका के इस अंक में भारतदीपक डा० सुकथनकर महोदय का महाभारत-विषयक एक मौलिक विवेचन हिंदी पाठकों के समक्ष हम सहर्ष उपस्थित कर रहे हैं। आगे संभवत: उनके महाभारत संस्करण का कुछ विशेष परिचय भी उपस्थित करने का हम यत्न करेंगे।

—कृ।

वाहीक ग्रामों के शुद्ध नाम

पत्रिका के वर्ष ४४, अंक ३ में 'पतंजलि और वाहीक ग्राम' शीर्षक जो हमारा लेख छपा है उसके संबंध में लाहौर से श्री स्वामी वेदानंद तीर्थ ने हमारा ध्यान निम्नलिखित नामों के आधुनिक उच्चारणों की ओर खींचा है। हमें अज्ञानवश हुई अपनी भूल के लिये खेद है और इस कृपा के लिये हम स्वामीजी के कृतज्ञ हैं। पाठक कृपया सुधार लें।

पृ० २३९—'आरात्' का वर्तमान प्रतिनिधि जो स्थान है उसका उच्चारण इस समय आर नहीं, **आड़ा** है। स्वामीजी ने लिखा है कि इसे 'आड़ा सद्धोवाल' भी कहते हैं। स्वामीजी ने खिउड़े के पास एक दूसरे आड़ा नामक स्थान का भी उल्लेख किया है, जहाँ पर प्राचीन टीलों के निशान दूर तक फैले हैं। हम इस संबंध में पुरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वविभाग का ध्यान इधर दिला रहे हैं; क्योंकि स्थान की निश्चित पहचान नियमित खुदाई से ही अच्छी तरह हो सकती है।

पृ० २४०—'कुशक' का ठीक उच्चारण **कुसक** है।

पृ० २४३—डेरागाजीखाँ से कुछ कम ५० मील उत्तर सिंधु नद के दाहिने तट पर जिस 'टौंसा' का हमने उल्लेख किया है, उसका शुद्ध उच्चारण **तौंसा** है। इसके अनुसार तो टालमी के Tiansa का उच्चारण भी **तिआँसा** करना चाहिए।

रोमन लिपि से अपने देश के स्थान-संबंधी नामों को सीखने के कारण हमारे ही समान और भी पाठक प्रायः भ्रांति में पड़ जाते हैं। यही देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता है। भारतीय भूगोल के सब स्थानों का देवनागरी के अनुसार उच्चारण स्कूलों में ग्रहण करना चाहिए। अपनी दक्षिण-यात्रा के समय बहुत से नामों के संबंध में बहुत सी भूलें हमारे देखने में आईं। कानपुर को कानपोर लिखकर भी उत्तर में उसका शुद्ध उच्चारण सब जानते हैं। पर हम नहीं जानते कि मंगलोर का शुद्ध रूप मंगलूरु (प्राचीन मंगलापुरम्), माईसोर का मैसूरु, तंजोर का तंजूरु, नेल्लोर का नेल्लूरु है। 'ऊरु' पुर का रूप है। दक्षिणी नामों में जहाँ ore अंत में हो वहाँ इसे पुर का विकृत रूप समझना चाहिए। विशाखापत्तन का विकृत रूप विज़गापट्टन एवं विजयनगरम् का विज़िआनगरम् है। दोर्जलिंग (दोर्ज=वज्र) को बिगाड़कर हम सब डार्जलिङ् बोलने और लिखने के आदी हो गए हैं। हम इस बात की आवश्यकता का बहुत अनुभव करते हैं कि भारतीय-स्थान-नाम-परिषद् का संगठन हमारे देश में होना चाहिए। तभी हम अपने प्राचीन भौगोलिक नामों की ठीक पहचान और आधुनिक नामों का ठीक उच्चारण सीख सकेंगे।

—वासुदेवशरण।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिंदी-आंदोलन

"पंजाब में हिंदी की दशा शोचनीय हो रही है। इस देश में पंजाब में ही आर्यभाषा का पहला विकास हुआ था। ठेठ पंजाबी में वैदिक शब्दों और प्रयोगों के अपभ्रंश बहुलता से मिलते हैं। उसमें कुछ वैदिक भाषा का सा रस और ऊर्ज मिलता है। पूर्वी पंजाब तो मध्यदेश के अंतर्गत है, जहाँ वैदिक भाषा संस्कृत हुई और इस रूप में केंद्रित होकर सारे आर्यावर्त्त की और फिर भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हुई। संस्कृत की आधुनिक उत्तराधिकारिणी हिंदी सहज ही मध्यदेश की अपनी भाषा और सारे देश की राष्ट्रभाषा है। अतः पंजाब की निजी प्रधान भाषा हिंदी ही है। परंतु कुछ काल से वह आक्रांत हो रही है और आज तो उसकी दशा शोचनीय ही हो गई है।" कार्तिक, ९६ में यह लिखते हुए हमने पंजाब सरकार के शिक्षा-मंत्री के हिंदी-घाती उद्योग का विरोध किया था और वहाँ उस आक्रमण के सबल प्रतिकार की आशा की थी। अब वहाँ प्रबल हिंदी-आंदोलन चल पड़ा है। पंजाब में हिंदी की वर्त्तमान अवस्था का एक आवश्यक विवरण तथा विवेचन और लाहौर के राष्ट्रभाषा-प्रचारक संघ तथा पंजाब-प्रांतीय हिंदी सम्मेलन के प्रयत्नशील होने की सूचना जो श्री बी० पी० 'माधव' ने प्रकाशित कराई है उसे हम सहर्ष इस अंक के 'चयन' में उपस्थित कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति की पुण्यवाहिनी संस्कृत भाषा और उसकी आधुनिक उत्तराधिकारिणी हिंदी की सुरक्षा के लिये जो भगीरथ प्रयत्न लाहौर के प्रोफेसर रघुवीर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० एट् डी० फिल्० ने किया है वह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने एक संकल्प-पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें संस्कृत और हिंदी के हित के छः कर्त्तव्य हैं। उस पर वे पंजाब-निवासी हिंदुओं के हस्ताक्षर करा रहे हैं। पंजाब में भाषा का प्रश्न विशेष सांप्रदायिक हो गया है; वहाँ हिंदू न होने का अर्थ संस्कृत और हिंदी भाषा तथा भारतीय संस्कृति का साग्रह प्रतिरोध करना हो गया है। अतः हिंदुओं से ही यह आग्रह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ताक्षर-युक्त वे संकल्प-पत्र अधिकारियों के पास भेजे जायँगे। इस प्रकार संस्कृत-हिंदी का आंदोलन बढ़ चलेगा और वह अवश्य बहुत कुछ सफल होगा। डा० रघुवीर ने हमारे पास अँगरेजी में एक लेख भेजा है जिसमें उक्त संकल्प-पत्र का विशदीकरण और उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये संस्कृत-हिंदी-प्रेमी जनता से सहायता का आग्रह है। यहाँ कुछ संक्षेप से हम उसका अनुवाद उपस्थित करते हैं—

"पंजाब की साधारणतः हिंदू जनता से जिस संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर कराने का कार्य मैंने हाल में चलाया है उसमें निम्नलिखित बातें हैं:—

१—पंजाब विश्वविद्यालय के मैट्रिक्यूलेशन और एफ्० ए० परीक्षाओं में हिंदी और संस्कृत और बी० ए० में हिंदी हिंदुओं के लिये आवश्यक हो।

पंजाब के प्रायः सभी स्कूलों और कालेजों में हिंदी और संस्कृत का प्रबंध है। कुछ ही बड़े स्कूलों और कालेजों में शिक्षक बढ़ाने होंगे। अतः यह आवश्यक परिवर्त्तन शीघ्र कर देना कठिन न होगा। इस प्रांत के हिंदू युवकों की शिक्षा में मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा एक सीमा है। कुछ समर्थ विद्यार्थी ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करनेवाले होते हैं। इस अवस्था तक एक युवक को इतना ज्ञान करा दिया जाता है जिससे वह संसार में अपना निर्वाह कर सके। क्या यह हिंदुओं के लिये बड़ी लज्जा और क्षोभ की बात नहीं है कि इस निश्चित अवस्था पर पहुँचकर भी उनके युवक अपने देश, धर्म और संस्कृति से अपरिचित रहें?

२—प्राइमरी और मिडिल की श्रेणियों में हिंदुओं के लिये हिंदी तथा संस्कृत आवश्यक बना दी जायँ।

इस प्रांत की सरकार इस प्रस्ताव का सबल विरोध करेगी। परंतु हिंदुओं को इसके लिये एकमत और दृढ़ हो जाना है। कोई सरकार अपनी भाषा के पाठन में हमारा प्रतिरोध नहीं कर सकती। हिंदू बच्चे की पहली शिक्षा हिंदी की सरल और वैज्ञानिक वर्णमाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मिलनी चाहिए। फिर उसे हमारे देश के उत्कृष्ट काव्य, कथा और इतिहास का बोध होना चाहिए। देश के महावीर भीम, विश्वमधुर पुष्प कमल, हिमालय, गंगा, चंदन और मनोहर मृगों से हमारे नवयुवक की कल्पनाएँ बनें। भारतीय वातावरण में वह पले। यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह महाघातक है कि हिंदू युवक फारसी, अरबी और योरपीय विचारों में पलें और अपना कुछ न जानें। फारस और अरब के विचार, इतिहास, पुष्प-पक्षी और काव्य अपने देश में फूलें-फलें। भारत उनसे मुक्त रहे। तभी वह उन्नत हो सकेगा और विश्व-सभ्यता के लिये अपनी विशेष देन दे सकेगा। जब भारत में सच्ची राष्ट्रीयता विजयिनी होगी तब मुसलमान भी समझेंगे कि संसार में उनका स्थान भारतीय के रूप में रहेगा, फारसी और अरबी के रूप में नहीं। उन्हें भी भारतीय कहलाने के लिये संस्कृत और हिंदी पढ़नी होगी। मुसलमान हों, ईसाई हों या कोई हों सबके सामने यह प्रश्न है कि वह कौन सी भाषा है जिसके स्वीकार से वे भारतीय बन सकते हैं। अँगरेजी नहीं, फारसी-अरबी नहीं, उर्दू भी नहीं ही। उर्दू तो हिंदी व्याकरण के साथ आकृति-प्रकृति में फारसी-अरबी ही है। वह भाषा एक संस्कृत ही है। १९वीं शती के मध्य तक वह भारत के लिये राष्ट्रभाषा रही है। उसी से भारत में एकसूत्रता रही है और उसी के द्वारा अब भी संभव है।

३—निर्णयालयों (अदालतों) तथा राजकीय कार्यालयों में हिंदुओं के लिये हिंदी राजभाषा बनाई जाय।

सरकार के विरोध और उपहास की हम कल्पना करते हैं। पर वह उपहास हमारी गंभीर दृढ़ता से शीघ्र चिंता में परिणत हो जायगा। सरकार से निर्णय पाने के लिये एक हिंदू एक विदेशी भाषा सीखने को बाधित क्यों हो?

४—स्कूलों और कालेजों में हिंदुओं की शिक्षा का माध्यम हिंदी को बनाया जाय।

जब उपर्युक्त माँगें पूरी होंगी तो यह तो सहज ही पूरी हो जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—हिंदुओं के लिये भारतीय सेना में रोमन उर्दू का स्थान हिंदी को मिलना चाहिए। सेना में हमारी भाषा को अभी कोई स्थान नहीं प्राप्त है।

६—हिंदी शुद्ध होनी चाहिए। उसमें अरबी, फारसी तथा अन्य विदेशी शब्द नहीं चाहिए। समस्त पारिभाषिक शब्द संस्कृत से लिए जायँ।

देश के वे लोग जिनकी राष्ट्रीयता की कल्पना कुछ गहरी नहीं है, जो भारतीय संस्कृति को यथार्थत: समझते नहीं हैं वे हमारा साथ न दें, पर हमें विश्वास है कि हिंदू जनता हमारे साथ होगी और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये दृढ़ता और प्रसन्नता से आवश्यक बलिदान करेगी। हम इस संकल्प-पत्र पर श्रावण के पहले १००००० हस्ताक्षर करा लेना चाहते हैं। हमें जन और धन दोनों के साहाय्य की अपेक्षा है। प्रत्येक हिंदू को इस कार्य में सक्रिय योग देना चाहिए। हिंदुओं को अर्थात् भारतीय राष्ट्र को भूत और वर्तमान की दासता के विरुद्ध पूरे सामर्थ्य से उठ खड़ा होना चाहिए।"

डा० रघुवीर ने एक पंजाबी के अनुरूप ही यह आंदोलन चलाया है। उनके संकल्प प्रांतीय ही नहीं, भारतीय महत्त्व के हैं। उनमें वस्तुत: भारतीय संस्कृति का ही प्रश्न है। भारताभिमानियों के सम्मुख आजदिन यह गंभीरतम प्रश्न है। संस्कृत भाषा में ही भारतीय संस्कृति की मुख्य धारा बही, वही राष्ट्र की प्रधान भाषा रही। अब हिंदी सहज ही उसकी उत्तराधिकारिणी है, पर उसका संस्कृतिभाषा और आकरभाषा के रूप में महत्त्व बना है। भारतीयता के रक्षार्थ ही हमें संस्कृत और हिंदी की रक्षा करनी है, इसके लिये प्रयत्न और आंदोलन करने हैं। हम आशा करते हैं कि देश के संस्कृत और हिंदी के प्रेमीमात्र इस प्रयत्न में डा० रघुवीर का उत्साह से हाथ बटाएँगे और जन-धन के पर्याप्त योग से तथा अधिकारीगण की सुबुद्धि से उन्हें यथेष्ट सफलता प्राप्त होगी।

—कृ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की प्रगति

प्रबंधसमिति

गत अंक में सभा की प्रबंधसमिति के समस्त सदस्यों के नाम प्रकाशित कर दिए गए थे। गत वर्ष तक काशी नगर और बाहर के मिलाकर प्रबंधसमिति के कुल केवल २१ सदस्य हुआ करते थे, किंतु २१ वैशाख १९९७ को सभा का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ था उसके निश्चय के अनुसार काशी नगर से तीन सदस्य तथा भिन्न भिन्न प्रांतों और रियासतों से पंद्रह सदस्य और चुने गए। अब प्रबंधसमिति के सदस्यों की संख्या इस वर्ष से उनतालीस रहेगी। इससे सभा का सर्वभारतीय रूप और अधिक स्पष्ट हो जायगा और सभा को पूर्ण विश्वास है कि सभी सुदूर प्रांतों का भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाने के कारण उसका बल अनुदिन बढ़ेगा जिससे हिंदी के सर्वराष्ट्रीय स्वरूप की प्रतिष्ठा में सुगमता होगी।

आयव्यय-निरीक्षण

गत वार्षिक अधिवेशन में पं० सूर्यनारायण आचार्य सभा के आयव्यय-निरीक्षक चुने गए थे, किंतु उन्हें अवकाश न रहने के कारण श्री गुलाबदास नागर (काशी) संवत् १९९७ के लिये सभा के आयव्यय-निरीक्षक चुने गए।

प्रकाशन

इस वर्ष अब तक सभा ने निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (संशोधित और प्रवर्धित संस्करण); 'उर्दू का रहस्य', 'मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान' (उर्दू में) और 'मुगल बादशाहों की हिंदी'। 'मध्यप्रदेश का इतिहास', जो कई महीने पहले छपकर तैयार हो गया था, अब नकशे आदि लगाकर सजिल्द रूप में प्रकाशित हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिक्री विभाग

सभा की पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े नगरों में प्रतिनिधि पुस्तकविक्रेता बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है और इसमें सफलता भी मिल रही है। बंबई, मद्रास, कलकत्ता, लाहोर, दिल्ली, पटना, इंदोर, प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, मुरादाबाद, आगरा, कोटा, जयपुर, जबलपुर आदि स्थानों में सभा के प्रतिनिधि पुस्तकविक्रेता बन चुके हैं जिनके यहाँ सभा की सब पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं।

सभा में पुस्तकों के स्टाक की व्यवस्था नए सिरे से हो रही है। एक आदमी केवल इसी काम के लिये अस्थायी रूप से रखा गया है। आशा है, सितंबर के अंत तक यह कार्य संपन्न हो जायगा।

पुस्तकालय

सूची का कार्य, जो गत वर्ष प्रारंभ किया गया था, प्रायः समाप्त हो चला है। साहित्य और काव्य की पुस्तकों को छोड़कर अन्य विषयों की सब पुस्तकों की मरम्मत और जिल्दबंदी हो गई और उन पर नंबर डाल दिए गए। प्रायः ८००० पुस्तकों की मरम्मत और ७०० पुस्तकों की जिल्दबंदी हुई। दर्शन, धर्म, समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, उपयोगी कला, ललित कला, इतिहास, भूगोल संबंधी पुस्तकें अपने विषय तथा अंतर्विषय क्रम से रखी गईं और इन विविध पुस्तकों तथा तत्संबंधी कार्डों पर लेखक-क्रम से नंबर डाले गए। इस भाँति एक विषय पर भिन्न भिन्न लेखकों की लिखी हुई समस्त पुस्तकें जो पहले छिटफुट कई अलमारियों में पड़ी थीं एक जगह आ गई हैं।

पुस्तकों का आदान-प्रदान बंद हो जाने के कारण सहायकों की संख्या, जो गत वर्ष के अंत में लगभग ८० हो गई थी, श्रावण १९९७ तक १०७ हुई और उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न लेखकों तथा प्रकाशकों से पुस्तकें मँगाने के लिये २७१ कार्ड भेजे गए जिनमें ५० कार्डों पर सफलता प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त कई प्रकाशकों ने अपनी पुस्तकें पुस्तकालय के लिये भेजीं। पं० अक्षयवट मिश्र ने अपनी लिखी हुई २२ पुस्तकें एक छोटी सी सुंदर अलमारी सहित पुस्तकालय को दीं जिसके लिये उन्हें धन्यवाद है।

गत वर्ष के अंत में हिंदी विभाग की छपी हुई पुस्तकों की संख्या १५२८२ थी। श्रावण १९९७ के अंत तक कुल संख्या १५४३२ हुई। इस प्रकार इधर १५० नई पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त १३ पुस्तकें तथा रिपोर्ट प्राप्त हुईं।

इस काल में पुस्तकालय १२२ दिन खुला था।

कलाभवन

इस वर्ष आरंभ से ही रेल विभाग की ओर से राजघाट में खुदाई का काम हो रहा है। वहाँ बहुत सी बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मिली है और मिलती जा रही है। हर्ष की बात है कि पुरातत्त्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल रावबहादुर काशीनाथ दीक्षित ने यह आज्ञा दे दी है कि राजघाट की सारी ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह भारत-कलाभवन में रहे। फल-स्वरूप बहुत सी पत्थर की मूर्तियाँ और टेराकोटा कलाभवन में संगृहीत किए गए हैं जो इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। यह संग्रह-कार्य अभी बराबर जारी है।

सूचना—स्थानाभाव के कारण १ ज्येष्ठ से ३१ श्रावण १९९७ तक सभा में २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली अब अगले अंक में प्रकाशित होगी। —संपादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110747

हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रंथावली	२)
२ हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	॥)
३ भारत गीत	≡)
४ राष्ट्र भाषा	॥)
५ शिवाबावनी	≡)
६ सरल पिंगल	।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १	२॥)
८ ,, ,, ,, ,, २	२।)
९ ब्रजमाधुरी सार	२॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध	१), १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र	।-)
१२ हिंदी-भाषा सार	।॥)
१३ सूरदास की विनयपत्रिका	≡)
१४ नवीन पद्य-संग्रह	।॥)
१५ कहानी-कुंज	॥=)
१६ बिहारी-संग्रह	≡)
१७ कवितावली	।॥)
१८ सुदामा चरित्र	।)
१९ कबीर पदावली	॥।=)
२० हिंदी गद्य-निर्माण	१॥)
२१ हिंदी साहित्य की रूप-रेखा	।)
२२ सती करुणकी	॥)
२३ हिंदी पर फारसी का प्रभाव	॥=)
२४ पार्वती मङ्गल	।)
२५ सूर पदावली	॥=)
२६ नागरी अंक और अक्षर	≡)
२७ हिंदी कहानियाँ	१॥)
२८ ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार	१।)
२९ तुलसी दर्शन	२॥)
३० भूषण-संग्रह भाग १	।-)
३१ भूषण-संग्रह भाग २	॥=)

(२) साधारण-पुस्तक-माला

१ अकबर की राजव्यवस्था	१)
२ प्रथमालंकार निरूपण	≡)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तक-माला

१ सरल शरीर विज्ञान	॥), ।॥)
२ प्रारंभिक रसायन	१)
३ सृष्टि की कथा	१)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पंचरत्न	॥)
२ वीर संतान	।=)
३ बिजली	=)

(५) ओझा अभिनंदन ग्रंथ

१६)

पुस्तक मिलने का पता—

साहित्य मंत्री, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था - लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए० एल्० एल्० एम्० । मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा । सचित्र । मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा । मू० १)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलेमान साहब नदवी । अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा । मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता - लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन) । मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत्—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्० एल० बी० । सचित्र । मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल । सचित्र । मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास । मू० ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी० । मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, मूल्य १।)

(११) सौर परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्० । सचित्र । मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, सचित्र । मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, प० रामनरेश त्रिपाठी । मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए० । मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य -लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए० । सचित्र । मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ । मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा । मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) **नातन** —लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुल्फ़ज्ल। मूल्य १।)

(१९) **हिंदी भाषा का इतिहास**—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(२०) **औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल**—लेखक, श्रीयुत शंकर-सहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) **ग्रामीय अर्थशास्त्र**—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२) **भारतीय इतिहास की रूपरेखा** (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) **भारतीय चित्रकला**—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) **प्रेम-दीपिका**—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) **संत तुकाराम**—लेखक, डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) **विद्यापति ठाकुर**—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० मूल्य १।)

(२७) **राजस्व**—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) **मिना**—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल०। मूल्य १)

(२९) **प्रयाग-प्रदीप**—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) **भारतेंदु हरिश्चंद्र**—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य ५)

(३१) **हिंदी कवि और काव्य** (भाग १—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) **हिंदी भाषा और लिपि**—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥)

(३३) **रंजीतसिंह**—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्०-एल० बी०। मूल्य १)

प्राप्ति-स्थान—हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110747
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के प्रतिनिधि पुस्तकविक्रेता

जिनके यहाँ सभा की सब पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं—

१—इंडियन प्रेस, बुकडिपो, प्रयाग।
शाखाएँ—बनारस, जबलपुर, पब्लिशिंग हाउस आगरा, पटना, लाहौर, छपरा।

२—ज्ञानमंडल पुस्तकभंडार, चौक, काशी।

३—हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बंबई।

४—राजस्थान पुस्तक-मंदिर, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

५—साहित्य रत्न भंडार ५३ ए, सिविल लाइन, आगरा।

६—भार्गव पुस्तकालय, चौक, काशी।

७—इंडियन बुक शाप, थियासाफिकल सोसाइटी, काशी।

८—साहित्य-निकेतन, कानपुर।

९—दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, त्यागराय नगर, मद्रास।

१०—सस्ता साहित्यमंडल, दिल्ली।
शाखाएँ—अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; बड़ा सराफा, इंदौर।

११—पंजाब संस्कृत बुकडिपो, नया बाजार, पटना।

१२—श्री अनंतराम वर्मा, जवेरी बाग, इंदौर।

१३—विद्यामंदिर, सर्गासूली, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

१४—हिंदी पुस्तक भंडार, हीराबाग, बंबई ४।

१५—मानससरोवर साहित्य निकेतन, मुरादाबाद।

१६—हिंदी भवन, हास्पिटल रोड, अनारकली, लाहौर।

१७—हिंदी साहित्य एजेंसी, बाँकीपुर, पटना।

१८—हिंदी कुटिया ,, ,, ,,

१९—हिंदी पुस्तक एजेंसी, ज्ञानवापी, काशी।
शाखाएँ—२०३ हरिसन रोड, कलकत्ता; दरीबा कलाँ, दिल्ली; गनपत रोड, लाहौर; (बाँकीपुर) पटना।

२०—शारदा मंदिर लि०, नई सड़क, दिल्ली।

२१—सरस्वती प्रेस बुकडिपो, बाँस का फाटक, काशी।
शाखाएँ—अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; खजूरी बाजार, इंदौर; जीरो रोड, इलाहाबाद।

२२—श्री वर्मा वैश्य ब्रदर्स, समथर स्टेट (सी० आई०)।

२३—श्री मोहनलाल जैन, मोहनन्यूज कंपनी, कोटा।

२४—श्री तेजमल सैाभाग्यमल, जबलपुर।

२५—क़िताबघर, कदम कुआँ, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Foundation Chennai and eGangotri